अक्तूबर-दिसम्बर 2003

युग स्पंदन

डॉ. भ. प्र. निदारिया

युग स्पंदन

वर्ष : 15 ❑ अंक : 4 ❑ अक्तूबर-दिसंबर 2003

आतंकवाद संस्कृति एवं सभ्य समाज विशेषांक

अनुक्रम

संपादक
डॉ. भ. प्र. निदारिया

प्रबंध संपादक
महेश यादव

संपादकीय कार्यालय
10841/44, मानक पुरा,
करोल बाग
नई दिल्ली-110 005

सहयोग राशि
एक प्रति : 20 रुपए
वार्षिक : 80 रुपए

संपादकीय

अस्मिता का प्रश्न बनाम आतंकवाद

मानव अस्तित्व की सार्थकता को लेकर जितनी भी चिंताएं हमारे सामने आती हैं, उनमें एक बड़ी चिंता मानवीय अस्मिता से जुड़ी है। अपनी पहचान की यह चिंता संभवतः मनुष्य की सबसे बड़ी चिंता है। इसे बचाए रखने, इसे बनाए रखने और इसे निरंतर बेहतर बनाते जाने का प्रयास भी मानवीय अस्मिता से जुड़ा है। कहीं मूलभूत आवश्यकताएं जुटाने के लिए, तो कहीं स्वयं को सबल-सुदृढ़-संपन्न बनाने के लिए मनुष्य की संघर्ष यात्रा सदियों से जारी है। इस यात्रा में कोई नकारात्मक मार्ग चुनता है तो कोई सकारात्मक मार्ग ! अपनी कल्पनाओं, इच्छाओं, अभिलाषाओं को साकार करने के ये प्रयास सत्ता से जुडते हैं और सत्ता जुड़ी है राजनीति से। इसमें दो राय नहीं कि राजनीति मानव समुदाय के स्वप्नों की इसी नब्ज़, इसी कुंजी को टटोल-पकड़कर अपने लिए सत्ता के द्वार खोलती है। राजनीति अस्मिता के संकट को गहराती है। अस्मिता का संकट जीवन में संघर्ष की प्रेरणा देता है। राजनीति इसी संकट का भय दिखाकर व्यक्ति को अपने पक्ष में करने की प्रक्रिया है। यह अलग बात है कि व्यक्ति को अपने पक्ष में करने की यह प्रक्रिया बाद में मात्र एक छलावा साबित होती है। अस्मिता के घेरे व्यक्ति को घेरे रहते हैं और राजनीति इन्हीं घेरों का फायदा उठाती है। राजनीति की भूख-प्यास अनंत होती है। सब कुछ स्वाहा करके भी उसका पेट नहीं भरता। दरअसल राजनीति एक विशेष प्रकार की मानसिकता है जो अब सेवा से अधिक सत्ता की ओर उन्मुख है। अपनी-अपनी संस्कृतियों की गौरवशाली परंपरा और सभ्य समाज या कि विकसित सभ्यता अस्मिता के इन घेरों से आसानी से बाहर आना नहीं चाहती। अपनी संस्कृति से अटूट प्रेम इसका एक बड़ा कारण है। कहीं-न-कहीं यह कुंठा का भी एक रूप है। अपनी संस्कृति को महान समझने की कुंठा। आखिर सभ्य समाज इन कुंठाओं का लाभ राजनीति को कब तक उठाने देगा ? क्या अपनी-अपनी कुंठाओं का शमन कर एक परस्पर सद्भावमूलक समाज की रचना संभव नहीं है ?

राजनीति अस्मिता विशेष को मुख्यधारा में, केंद्रीयता में लाने का आश्वासन देती है। उसी आश्वासन से शुरू होता है उम्मीद, वैमनस्य और मोहभंग का सिलसिला। पहले तो मुख्यधारा में लाने का आश्वासन ही व्यक्ति को उसके पृथक्करण का अहसास कराता है। तदुपरांत मुख्यधारा व केंद्रीयता में आने के उपक्रम में व्यक्ति अपने ही बीच विभेदों के अन्यान्य पक्षों से घिर जाता है। लिंग, रंग, जाति, क्षेत्रीयता, धर्म, संस्कृति, धन व भाषा आदि की अस्मिताएं तो हैं ही, बाद में इनमें भी कई-कई विभेद हैं। गोकि एक मुख्य अस्मिता के पश्चात फिर अन्य पूरक अस्मिताएं हैं, ऊँच-नीच के आग्रह हैं, निहित स्वार्थ हैं, शोषण हैं-अटूट सिलसिले के रूप में, अनंत सीमा के रूप में-जिसकी प्रतिक्रिया है आतंकवाद ! एक ओर मुख्यधारा है दूसरी ओर अनंत लहरें हैं, एक ओर केंद्रीयता है, दूसरी ओर विखंडन हैं। संभवतया दोनों अतिवादी हैं। इनमें संतुलन और समन्वय अपेक्षित है। एक ओर आदर्श

हैं, परिकल्पनाएं हैं, दूसरी ओर व्यावहारिकता है, ठोस यथार्थ है। इन दोनों स्थितियों में भी संतुलन और समन्वय अपेक्षित है। सबके पास गौरवशाली संस्कृतियां हैं, सभ्यता का इतना विकास भी है। ऐसे में विभेदों की इस दीर्घ श्रृंखला को पुष्पहार में बदलकर एक व्यापक भूमंडलीय अवधारणा का हिस्सा क्यों नहीं बना जा सकता ? किंतु समस्या का मूल यही है–हिस्सा कोई नहीं बनना चाहता और सर्वस्व हर कोई बनना चाहता है। ऐसे में क्या आतंकवाद का कोई निदान, कोई जादुई निदान किसी को सूझता है ?

आतंकवाद कुंठा से जुड़ी समस्या है। आतंकवादी मानसिकता के मूल में कुंठाएं होती हैं। सबसे बड़ी कुंठा होती है–आमने-सामने समस्या न सुलझा पाने की। ऐसे में कुंठित व्यक्ति, समुदाय या व्यवस्था अचानक और छिपकर वार करती/करवाती है। चोरी-छिपे वार की यह प्रक्रिया अब बहुत सुगम हो गई है। अब प्रौद्योगिकी का विकास आतंक के महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में हमारे सामने है। अब दुश्मन अदृश्य है, अज्ञात है और दुश्मनी अघोषित है। सूचना प्रौद्योगिकी की मदद से कहीं दूर छिपे-बैठे ही वैर-भाव को अंजाम दिया जा सकता है। दुश्मन जितना अधिक कुंठित होगा, उतना ही बड़ा नुकसान पहुंचा सकता है। आतंक की भयावहता और विनाश की लीला से कुंठा का वेग और गहराई सहज ही जानी व समझी जा सकती है।

पहले आतंक का रूप यह था कि आतंकवादी दूसरों को ही मारने और उनका नुकसान पहुंचाने का प्रयास करता था। स्वयं को वह सुरक्षित रखता था। अब आतंक मानव बम के रूप में उभरकर सामने आया है और इस रूप से जुड़ा है शोषण ! ध्यातव्य है कि अज्ञात कुंठित दुश्मन निर्धन, भोले व उत्पीड़ित लोगों की मदद से अपनी कुंठाओं को अंजाम दिलवाता है। वह उनकी विवशताओं का उपयोग उन्हीं के खिलाफ कर आतंक फैलाता है। आतंक के इस खेल में उन्हीं को अग्नि बनाया जाता है और उन्हीं को इस अग्नि में झोंका जाता है। राजनीति आतंक की इस अग्नि को हवा देती है। यही कारण है कि कोई राज्य/देश अपने हितों व नीतियों, मुद्दों को ध्यान में रखते हुए एक समय विशेष में एक प्रकार के आतंक के लिए विरोध करता है तो दूसरे प्रकार के आतंक के लिए मौन रहता है। यही उसका वोट बैंक है, जन-समर्थन है। इसे हम दूसरे शब्दों में भी समझ सकते हैं। अपने स्वाभिमान को ताक पर रखकर जब हम सत्ता के तलुवे चाटते हुए अथवा ओछी राजनीति खेलते हुए अपनों के ही खिलाफ षड्यंत्र रचने लगते हैं तो उन शक्तियों के वोट-बैंक के रूप में होते हैं जो सेवा-समर्पण से इतर भ्रष्टाचार, निहित स्वार्थों व लूट खसोट में विश्वास रखती हैं। उनकी निष्ठाएं अपने कर्त्तव्यों और लोक-हितों की ओर नहीं होतीं। ऐसी शक्तियां अपने अधिकारों का दुरुपयोग करती हैं और उन अधिकारों से प्रतिभा, विकास, सकारात्मकता तथा अन्य नैतिक मूल्यों को सहज ही घातक नुकसान पहुंचाने से बाज़ नहीं आतीं। ऐसी शक्तियों के तलुवे चाटने वाले लोग जितने ज्यादा होते हैं, वे जनता का उतना ही ज्यादा नुकसान करती चलती हैं। यह एक अनंत प्रक्रिया है। कुंठाओं के समर्थन व तदुजनित परिणामों की प्रक्रिया! तिस पर सत्ता-मद की कुंठाएं कुछ ज्यादा ही उच्छृंखल व घातक होती हैं–निकृष्टतम मानसिकता से युक्त ! जो स्वयं को बुद्धिजीवी कहते हैं वे ही जब ऐसी निकृष्टतम सोच वाली शक्तियों का साथ देते हैं तब बुद्धिजीवी की अस्मिता बदली नजर आती है। ऐसे में

बुद्धिजीवी की धूर्तता और आत्मकेंद्रित मनोवृत्ति हमें ले चलती है सभ्य समाज की ओर! जो समाज सभ्य है वह नैतिक मूल्यों को, लोक हितों से जुड़ी निष्ठाओं को समर्थन देता है। सकारात्मक विकास उसे ग्राह्य है। शांति और सद्भाव की स्थापना के लिए वह सचेष्ट रहता है। टुच्चे स्वार्थ उसे आकर्षित नहीं कर पाते। इस प्रयास में प्राय: उसे अपने प्राप्य से भी हाथ धोना पड़ जाता है। यही कारण है कि बुद्धिजीवी तथा सभ्य समाज के मध्य एक विभाजक रेखा साफ दिखाई देती है। प्रश्न यह उठता है कि छोटे-छोटे या तात्कालिक स्वार्थों की खातिर एक समय में एक प्रकार के आतंक का विरोध करना और उसी समय दूसरे प्रकार के आतंक के प्रति खामोश रहना या उसे बढ़ावा देना कहां की नैतिकता है ? क्या इससे आतंकवाद को समाप्त किया जा सकता है ?

लोकतंत्र की अपनी सीमाएं होती हैं, समस्याएं होती हैं किंतु यह भी तय है कि सभ्य समाज के भी अपने अधिकार होते हैं। सुरक्षा के अधिकार ! सभ्य समाज की सुरक्षा का दायित्व बुद्धिजीवी तो ले नहीं सकते। अपनी बुद्धि के बलबूते जो अपने स्वाभिमान को ताक पर रखकर, अपनी ही सुरक्षा में लगे रहें उनके लिए व्यापक हित की बात सोचना ठीक वैसे ही है जैसे अपने पैरों पर खुद ही कुल्हाड़ी मारना। सभ्य समाज की सुरक्षा सत्ता व उससे जुड़ी शक्तियां भी ईमानदारी से नहीं करना चाहतीं। उनका ध्येय होता है सत्ता से चिपके रहना, शक्तियों को धारण किए रखना और इसके लिए विभेद की नीति अपनाए रखना, आतंक को बरकरार रखना। तब सभ्य समाज की सुरक्षा कौन करे ? उसकी सुरक्षा के अधिकार की रक्षा कैसे हो ? आतंकवाद के कहर से उसे कैसे बचाया जाए ? उसे कौन बचाए? उसकी सुरक्षा की जवाबदेही के लिए कौन जिम्मेदार हो ?

सभ्य समाज को, सहज-सरल-ईमानदार-परिश्रमी समाज को बचाने के लिए व्यवस्था के पास कोई ठोस कार्यक्रम नहीं किंतु आतंकवादी को बचाने के लिए वकील न जाने कितने प्रपंच रचता है ! कितने असत्यों को सत्य में, कितने सत्यों को असत्य में परिणत कर देता है। अंतत: उसे बेकसूर सिद्ध कर न्यायालय की मोहर भी लगवा लेता है। राजनीतिक आतंकवादियों को तो असभ्य समाज खुले आम निर्लज्ज समर्थन व प्रोत्साहन भी देता है। एक गलत व्यक्ति की सुरक्षा और समर्थन का यह समूचा तामझाम क्या आतंकवाद को समाप्त कर सकता है ? क्या ऐसा नहीं कि जो किसी भी कारणवश आतंक की दिशा में बढ़ा हो, उसे सजा मिलने की बजाय यदि सुरक्षा व संरक्षण मिल जाए तो उसके हौसले बुलंद नहीं हो जाएंगे ? निश्चय ही दूसरी बार उसके आतंक की धार कुछ ज्यादा ही तेज व मारक होगी। दूसरी बार उसकी कुंठा पहले की अपेक्षा ज्यादा ही बड़ी और विस्फोटक होगी। क्या व्यावसायिक कारणों से, यातना देने वाले अथवा कत्ल करने वाले को बचाने का उपक्रम करना यातना और कत्लेआम को बढ़ावा देना नहीं है ? ऐसी व्यवस्था में कब परिवर्तन होगा जिसमें सभ्य समाज उत्पीड़न तथा कत्लेआम के लिए अभिशप्त हो ?

दु:खद स्थिति यह है कि जिन्हें जीना है, जो गरीब हैं, जो मेहनती हैं, ईमानदार हैं, उत्पीड़ित हैं, सकारात्मक हैं उनके अधिकारों की बात कोई नहीं करता। और, यदि ऐसी चर्चा कहीं होती भी है तो अपने आंकड़ों को बढ़ाने भर के लिए। हार्दिक रूप से न तो उनकी

सुरक्षा की चिंता किसी को है, न उनके सुरक्षा अधिकार संबंधी जवाबदेही की चिंता किसी को है। मीडिया भी उत्पीड़न दृश्यों की मात्र झलक दिखाकर आतंकवादी सरगना को 'हीरो' (नायक) के रूप में दिखाकर स्वयं को अधिक गौरवान्वित/चर्चित महसूस करता है।

सभ्य समाज का दर्द यह है कि वह उत्पीड़ित भी है और उसके उत्पीड़न का न तो कोई खुलासा है, न ही कोई उपाय है। यह दोहरा दुख सभ्य समाज की नियति बनता जा रहा है। आखिर सभ्य समाज क्यों नुकसान उठाए ? इसका जवाब देने में लोकतंत्र स्वयं को असमर्थ पाता है। कभी-कभी लगता है, लोकतंत्र स्वयं ही अपना दुश्मन है। आखिर सभ्य समाज अपनी सुरक्षा कैसे करे ? इस सभ्य समाज का विस्तार कैसे हो ? इसका संगठन कैसे बढ़े, इसे अपनी सुरक्षा हेतु कैसे शिक्षित-प्रशिक्षित किया जाए ताकि असभ्य समाज अल्पसंख्यक हो जाए और अपराध को अपराध की दृष्टि से ही देखा, सोचा-समझा व परखा जाए। मानसिक यंत्रणा देना अथवा कत्लेआम की स्थितियां बनाना अंततः घनघोर अपराध हैं। इन अपराधों की सजा जितनी अधिक प्रभावी होगी उतने ही ये अपराध कम होंगे। दुनियाभर में मृत्युदंड को लेकर बहसें होती रही हैं। अन्यायी को लोकतंत्र की दुहाई देकर अथवा न्यायिक दावपेचों के सहारे बचाने का प्रयास अन्याय को बढ़ावा देना ही है। आखिर आतंकवाद के इस पक्ष पर कब खुलकर बहस होगी कि यातना अंततः यातना ही है और कत्ल आखिर कत्ल ही है।

विश्वव्यापी समस्या आतंकवाद को समाप्त करने के उपक्रम में बड़े-बड़े देश अपनी अर्थ-व्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा प्रतिवर्ष होम कर देते हैं किंतु आतंकवाद की रफ्तार थमती नज़र नहीं आती, उसकी विभीषिका घटती नजर नहीं आती। निर्दोष जनता इसकी शिकार बनने में लगी हुई है। इस सच्चाई को भी झुठलाया नहीं जा सकता कि जिन्होंने आतंकवाद को जन्म दिया या बढ़ावा दिया, एक दिन वे स्वयं उसकी चपेट में आए हैं। आवश्यकता है, आतंकवाद के कारणों को समाप्त करने की। आतंकवाद के कारणों को समाप्त किए बिना आतंकवाद को समाप्त नहीं किया जा सकता। पेड़ से पत्तों को तोड़ फेंकने का अर्थ यह कदापि नहीं कि पेड़ को उखाड़ दिया गया। जब तक पेड़ की जड़ें मौजूद हैं तब तक उसमें नए-नए पत्ते उगते रहेंगे। इसलिए पत्तों को नहीं, जड़ों को मिटाना होगा। क्या आज राजनीति को ऐसे चाणक्य की जरूरत नहीं है जो आतंकवाद की जड़ों में मट्ठा डाल सके ?

जिस आतंकवाद से पूरा विश्व त्रस्त है उसके बारे में भारतीय साहित्य का क्या रुख है ! इसी जिज्ञासा के परिणामस्वरूप 'युग स्पंदन' के 'आतंकवाद' विशेषांक की योजना बनाई थी। एक चर्चा के दौरान प्रख्यात चिंतक व साहित्यकार श्री देवेंद्र इस्सर ने 'आतंकवाद' के साथ-साथ 'संस्कृति एवं सभ्य समाज' विषय को भी जोड़ने और तत्संबंधी जिज्ञासाओं व प्रश्नों को जनता के समक्ष रखने का सुझाव दिया। इस संबंध में श्री देवेंद्र इस्सर जी से मिले वैचारिक सहयोग के लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूं। अंक आपके सामने है। भारतीय ही नहीं, वैश्विक साहित्य भी आतंकवाद-विरोधी है। आतंकवाद के कारणों से लेकर उसकी विभीषिकाओं तक के बारे में दुनियाभर की लेखनी चिंतित है। अनवरत जारी है आतंकवाद के विरोध में लेखनी का सार्थक हस्तक्षेप !

भ० प्र० निदारिया

जब आतंक ने मेरे गेट पर दस्तक दी

डॉ. ललित शुक्ल

जी हां, यह कोरी कल्पना नहीं है। बात कई साल पहले की है। मंगलवार का दिन था। शाम के पांच बजे थे। मई का महीना। अभी बाहर गर्मी थी। इस दिन मेरे घर के सामने वाली सड़क पर फुटपाथी बाजार लगता है। मैं घर के सामने बैठा कुछ पढ़ रहा था। अचानक शोर सुनाई पड़ा–"भागो-भागो बम ! अभी फट जाएगा तो जान ले लेगा। बाजार में भगदड़ मच गई। स्थायी दुकानों के शटर गिरने लगे। फुटपाथिये दुकानदार अपनी दुकान समेटने लगे। मैं गेट के पास जाकर वास्तविकता जानने की कोशिश करने लगा। लोहे के गेट पर खट-खट की आवाज होने लगी। मैं उधर मुखातिब हुआ तो पाया कि बाजार की भीड़ घबड़ाई हुई अंदर आना चाहती है। स्त्रियां घबड़ाई हुईं, बच्चे सहमे हुए, पुरुष चकित भौचक्के से। एक ने कहा–"भाई साहब! बाजार में कुछ आतंकवादी आ गए हैं। अंधाधुंध गोलियों से लोगों को भून रहे हैं। हमें बचाइए।" घर में शायद न आएं। सोचा मैंने कि सो बात नहीं है। आतंक का बवंडर कहीं भी घुस सकता है। घर, किला, पार्लियामेंट हाउस और ट्रेड सेंटर भी।

मैंने गेट खोल दिया। कुछ बच्चे और स्त्रियां प्यास के मारे कुम्हलाए हुए थे। उन्हें पानी पिलाया। लगभग तीन-चार सौ आदमी घर के अंदर आ गए। उन्हें सांत्वना देते हुए पीछे के गेट से बाहर निकाला। गलियों से होते हुए वे अपने-अपने घर गए होंगे। शोर शांत हुआ। दहशत का धुआं थमा। दुकानें पुनः बिछ गईं। शटर खुलने लगे। आवाजाही पुनः चालू हो गई। थोड़ी देर के बाद पता चला, कहीं कुछ नहीं था। अफवाह और अपयश के फैलने की गति बड़ी तीव्र होती है। कोई बात एक कान में पड़कर कई-कई मुंहों से निकलकर स्तूपीकृत होती जाती है।

आतंक से क्या हम सचमुच आतंकित हैं। मैं यहां केवल उस निरीह समाज की बात नहीं कर रहा हूं जो आतंक के अजगर के मुंह में जाने को अभिशप्त है, बल्कि उनकी बात भी सोचनीय है जिनके पास सुरक्षा के कारगर साधन हैं, सुविधा है। ऐसे लोगों की बंदूकें दूसरों के कंधों से दगती हैं। किसी न किसी रूप में सभी आतंकित हैं। सुरक्षित तो आतंकवादी भी नहीं हैं। जो आत्मघाती बनकर दूसरों को मारते हैं वे भी कुत्ते की मौत मरते हैं। भारत एक बड़ा देश है। इसके चारों ओर आंतक का खतरा है। इस खतरे को देश केवल महसूस ही नहीं करता बल्कि भोगता भी है। कितने नागरिक और सुरक्षाकर्मी आतंक की आग में खप गए।

यदि हम आतंक के कारणों की पड़ताल करें तो ज्ञात होता है कि दादागीरी, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि वे कारक हैं जो आतंक को जन्म देते हैं। सभ्यता के विकासक्रम

में आदमी ने अपने अंदर बैठे जानवर को हराया है, मारा है। अब पुन: अंदर का वही जानवर जागा है। वही अपनी बड़ी-बड़ी नुकीली सींगों से सभी को आतंकित करता फिरता है। व्यक्ति-व्यक्ति को, अंचल अंचल को, जाति-जाति को, वर्ग-वर्ग को, देश-देश को आतंकित करता फिरता है। यदि आतंक के मूल में झांकें तो पता चलेगा, मनुष्य स्वयं किसी बिंदु पर चूक रहा है। अपने को हलाल करने का हथियार वही तैयार करता है। जब उसकी तमन्ना के घोड़े काबू में नहीं रहते, वह स्वयं तो गिरता ही है, दूसरों का रास्ता भी छेंकता है। कुल मिलाकर जिम्मेदारी का संकेत उसी की तरफ जाता है।

इस कुचक्र में बहुत कुछ योगदान राजनीति का भी रहता है। अमरीका, इराक, इजरायल, फिलिस्तीन, अफगानिस्तान, श्रीलंका, भारत, उल्फा, नक्सलाइट, पी-डब्लू-जी, चेचन्या, वियतनाम आदि ऐसे ही प्रसंग हैं जो भयावह तो हैं ही, राजनीति से भी प्रेरित हैं। भारत में भिंडरावाले का जन्म, पश्चिमी देशों में ओसामा बिन लादेन का वजूद, इन सारे संदर्भों के पीछे कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में राजनीति जरूर रही है। इसे कूटनीति भी कह सकते हैं। आतंक के फैलाव में भस्मासुरी वृत्ति काम करती रही है। आतंक ने उन्हीं पर हाथ उठाया है जो उसके जन्मदाता हैं। विश्व के कई शासनाध्यक्ष ऐसे ही आतंक की चपेट में आए हैं। आ रहे हैं। कहीं-कहीं तो आतंक स्वयं के लिए भारी पड़ रहा है।

हमें अपना (?) भूखंड चाहिए, हमारे अंचल की भाषा अद्‌वितीय है। हम किसी के मातहत नहीं रहना चाहते। मेरे सामने वह कैसे सिर उठाकर चलता है! चल सकता है! इतना ही नहीं, दुनिया के कुछ मुल्क तो शांति के ठेकेदार बने फिरते हैं। ये सारी स्थितियां आतंक को जन्म देने वाली हैं। साहित्य के क्षेत्र में कतिपय लोग गिरोह, मंडली या दल बनाकर एक-दूसरे को आतंकित कर रहे हैं। ऐसे नरपुंगव निंदा की तलवार चमकाते सड़कों पर घूमते दीख पड़ते हैं।

यहां सवाल पैदा होता है कि फिर किया क्या जाए ? इस समस्या का समाधान क्या है। आतंक फैलाने में अच्छे खासे पढ़े-लिखे लोग भी शामिल हैं। अब आचरण की शुचिता का अवमूल्यन हो चुका है। सारा आसमान धूमायित है। धरती प्रदूषण की शिकार है। सहिष्णुता, सद्‌भाव, शांति और परस्परता बीते युग की बातें रह गई हैं। लोभ, ईर्ष्या, मात्सर्य, बदला लेने की भावना, शोषण और आतंक वर्तमान युग की बातें हैं जो ऋणात्मक हैं और मानवद्रोही हैं। अब तो हालात ऐसे हो गए हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था झूठी पड़ गई लगती है। मनमानी करने वाले राष्ट्र उसकी सुनते ही नहीं। कुछ सकारात्मक परिणामों की उम्मीद तभी की जा सकती है जब आदमी स्वयं चेते और मानव द्रोही घातकों का परित्याग करे। व्यक्ति चेतना ही परिवार, समाज और राष्ट्र का नक्शा बदल सकती है। केवल बुद्‌धिवादी आंदोलनों से कुछ भी पूरा हासिल होने वाला नहीं है। इस प्रयास में दिल और दिमाग़ की सहभागिता बहुत जरूरी है।

कश्मीरी विस्थापन कविता : सदमा, सन्नाटा और स्मृति-दंश

डॉ. महाराजकृष्ण भरत

आठवें दशक (1971-81) के उत्तरार्द्ध और नवें दशक (1981-90) के पूर्वार्द्ध में कश्मीर में इस्लामी कट्टरवाद सशस्त्र आतंकवाद के रूप में जड़ें धीरे--धीरे जमा रहा था। फलस्वरूप लल्लेश्वरी और नुंद ऋषि की संत-सूफी परंपराओं को वहन करने वाली घाटी की सांझी-सांस्कृतिक विरासत और सौहार्द को क्षत-विक्षत किया गया, कश्मीरियत निर्वासित हो गई। क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए भी एक रचनाकार का यह दायित्व है कि वह समाज में घट रही घटनाओं को अपनी रचनाओं में स्थान दे। 1989-90 के कालखंड में आतंकवाद चरम पर था। घाटी में हत्याएं, अपहरण, आगज़नी, बम-विस्फोट की घटनाएं ज़ोर पकड़ रही थीं। आए दिन बंद, सिविल कर्फ्यू से आम आदमी क्षुब्ध हो गया था। 'निजाम-ए-मुस्तफा' के नारे से भयभीत एक विशेष समुदाय के लोगों ने घाटी से पलायन प्रारंभ कर दिया और देखते ही देखते तीन लाख से अधिक लोग घाटी से बाहर आ गए, जिन्होंने राज्य तथा राज्य से बाहर शरण ली।

उधर घाटी के घटनाचक्र ने जोर पकड़ा और इधर अपने ही देश में लोग विस्थापित बस्तियों में गुजर-बसर करने लगे। विस्थापित हुए रचनाकार कैसे अपनी भीतर की तड़प को अधिक देर तक दबा सकते थे। ऐसे में कश्मीरी विस्थापित रचनाकारों ने आगे आकर अपनी भूमिका निभाना प्रारंभ किया। यद्यपि यह काफी बाद में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के माध्यम से ज्ञात होने लगा कि कुछ लिखा जा रहा है। कश्मीरी विस्थापित कवि ने अपना मौन तो शीघ्र ही तोड़ा शायद इसलिए भी क्योंकि यह घाटी से बाहर था, लेकिन घाटी में अपने घरों में रह रहे कवि या तो चुप्पी साधे बैठे रहे, या फिर प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण लिखने के बावजूद उसे प्रकाश में नहीं ला सके। जिस गति से घाटी से बाहर विस्थापित कवियों की रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहीं उतनी तीव्र गति से घाटी में रह रहा कश्मीरी कवि नहीं छप सका। फिर भी 1993 में दो कश्मीरी कविता संग्रह श्री अर्जुनदेव मजबूर का 'प॰य समयिक्य' समय के पद चिह्न और श्री फारूक नाज़की का 'नार ह्यातुन कजलवनस' 'आग लगी कजलवन में' प्रकाश में आया। कश्मीरी कविता के सन्नाटे को तोड़ने के लिए इतना काफी था। इस बीच शफी शैदा का 'अनहार' रूप और 1995 में श्री ब्रजनाथ बेताब ने अपना प्रथम कश्मीरी कविता संग्रह 'ख्वाबन हुंद खरीदार' सपनों का खरीदार पाठकों के समक्ष रखा। इस बीच कवि मजबूर का 1995 में एक और संग्रह 'त्योल' प्रकाश में आया। इधर वासुदेव रेह के तीन कविता संग्रह-'शब्द गेरुद' (बहरूआ), म्येनि वचन (मेरे गीत), तथा 'याद वोतुर' (स्मृति पत्र), प्रकाशित हुए हैं, पर विस्थापन पर अलग से कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं। इस संदर्भ में केवल पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं छपी हैं। कुल मिलाकर आठ कश्मीरी कविता संग्रह प्रकाश में आए हैं जिनमें से पांच विस्थापन पर केंद्रित हैं जबकि प्यारे हताश

और कवि हलीम का एक-एक संग्रह प्रकाशनाधीन है।

इस प्रकार फिर से प्रारंभ हुई कश्मीरी कविता की अवरुद्ध हुई यात्रा। 'शीराज़ा' (कश्मीरी) जो वर्षों से बंद पड़ा था, उसका प्रकाशन भी आरंभ किया गया। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में भी कश्मीरी कविता के अनुवाद छपने लगे। धीरे-धीरे कश्मीरी कविता ने विस्थापन और आतंकवाद पर केंद्रित विषयों को अपने में आत्मसात किया। यह बात अलग है कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में विस्थापन और आतंकवाद की जो झलक कश्मीरी कविता में परिलक्षित हुई, उसका प्रतिबिंब पिछले दशक की कविताओं में देखा जा सकता है। इस बारे में श्री मोतीलाल साकी का कहना है कि "जिस स्थिति की अभिव्यक्ति आज की कश्मीरी कविता में हो रही है, वह कश्मीरी काव्य में पिछले दशक के आरंभ से ही उभरने लगी थी।"[11] इससे पूर्व भी 1992 में इस पूर्वाभास को महसूस करते हुए डॉ. रतनलाल शांत ने कश्मीरी कविता और कहानी लेखन के बारे में लिखा है, "कश्मीरी भाषा में अल्पसंख्यकों के वर्तमान विस्थापन का पूर्वाभास पिछले दशक के दौरान होने लगा था, जब लेखकों ने तेज़ी से हो रहे इस्लामीकरण तथा व्यवस्था की नाकाफी प्रतिक्रिया के बीच पिस रहे आम आदमी की मानसिक यातना का चित्रण किया। मोतीलाल 'नाज़', चमन लाल 'चमन', मोतीलाल साकी की कविताओं, मोतीलाल क्यमू के नाटकों, हरिकृष्ण कौल, हृदय कौल भारती, अवतारकृष्ण रेहबर तथा रतनलाल शांत की कहानियों में असुरक्षा, भय और संदिग्ध भविष्य की भयावह आशंकाओं का चित्रण मिलता है।"[12]

वर्तमान विस्थापित कश्मीरी कविता का जो परिदृश्य आज हमारे समक्ष है उसका एक जायज़ा यहां पर प्रस्तुत है। पहले विस्थापित कश्मीरी कवियों की उन कविताओं का उद्धरण दिया जा रहा है, जो घाटी के इस पार लिखी जा रही है और तदनंतर घाटी के उस पार रह रहे कश्मीरी मुस्लिम कवियों की कविताओं को उद्धृत किया जाएगा। कश्मीरी कविता संग्रहों के अलावा हिंदी में इन कविताओं के अनुवाद 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'कोशुर समाचार', 'भाषा' (दिल्ली) तथा 'शीराज़ा' (हिंदी) में छपने लगे, वहीं 'कोशुर समाचार', 'नाद' और क्षीरभवानी टाइम्स में ये कविताएं फारसी लिपि में नहीं वरन् देवनागरी लिपि में भी प्रकाशित हुईं। कश्मीरी कविता, जो दो भावभूमियों पर लिखी जा रही है, का जायका, स्वरूप भिन्न-भिन्न है और लहजे में भी यह भिन्नता दिखाई देती है। इस भिन्नता में भी परिलक्षित साम्यता इन कविताओं की विशेषता है।

कश्मीरी विस्थापन कविता में जहां आक्रोश है, दैन्य भाव और स्मृति के चित्र हैं, वहीं युद्ध की आशंका भी है, पर इस युद्ध को कवि नकारता हुआ शांति के प्रति आशावान है। युग कवि दीनानाथ नादिम ने 'मुझे आशा है कल की' कविता में उक्त भाव व्यक्त किए हैं। श्री नादिम कश्मीरी कविता के ऐसे अग्रणीय कवियों में हैं जिन्होंने 1947 से पूर्व ही कश्मीरी कविता में पदार्पण किया। 'शिहिल्य कुल्य' (शीतल वृक्ष) कविता संग्रह के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित किया गया। उन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' और 'कल्हण पुरस्कार' से भी

सम्मानित किया गया है। कश्मीर में अतुकांत और मुक्त छंद के वे प्रवर्तक माने जाते हैं। उनकी कश्मीरी में पहली कहानी 'जवाबी खत' है तथा प्रथम सॉनेट 'गाश तारुक' (प्रकाश तारा)। आज की भयावह स्थिति को झेलने के बावजूद दीनानाथ नादिम कल के प्रति आशावान दिखते हैं।

"सुनते हैं कि कल होने वाला है युद्ध नहीं/कल नहीं होना चाहिए/कल जगमगाएगी दुनिया/कल युद्ध नहीं होना चाहिए।"[3]

पद्मश्री कश्मीरी कवि मोतीलाल साकी खूनी माहौल में गज़ल न लिखने की विवशता को यूं बयान करते हैं :-"हाय, सुनहरी धरा खून से लाल हुई, क्यों लिखूं ग़ज़ल।[4]

घाटी में आरे की मशीन पर आतंकवादियों ने एक दंपत्ति को चीरा।

आरे पर एक अबला की चीखों की मर्मांतक पीड़ा को 'आरे की धार !' कविता में शंभुनाथ भट्ट 'हलीम' ने इस प्रकार उतारा है :-"तेज़ धार का आरा लेकर/ज़ोर-ज़ोर से चीख पड़ा वह/बिस्मिल्लाह बिस्मिल्लाह करता/झपटा और पकड़ ली छाती/इक अबला की/पंख फड़कती गौरैया की!/धार उतारी बीच बदन में/दूध उफनता था जिस थन में।"[5]

बर्बरतापूर्ण इस कुकृत्य पर कवि बौखला उठता है। ऐसे बीभत्स कृत्यों को वह मानवता की बदनसीबी समझता है। श्री हलीम के शब्दों में :-"यही अगर वह आज़ादी है/जुल्म जब्र की, बर्बरता की/उग्रवाद की कायरता की!/तौबा! ऐसी आज़ादी से/बर्बादी से मानवता की नाशादी से।।"[6]

चमन लाल 'चमन' ने कविताओं की शुरुआत रूमानी भावों से की पर समय ने उन्हें कविता के उस सच से भी मिलाया जहां प्रकृति और प्रेम की अवधारणाएं फीकी पड़ जाती हैं। श्री 'चमन' ने शीघ्र ही समय की आवाज़ को महसूस किया और समाज में व्याप्त दिशाहीनता, हिंसा को अपने काव्य का विषय बनाया। कवि को आज की परिस्थितियों में लग रहा है कि वितस्ता रक्त मांग रही है :-"किसे पता था/बुझाने को प्यास/रक्त मांगेगी/वितस्ता/अस्तित्व ही पोंछ लेगी/अपने जायों का।"[7]

खून के दरिया बहने लगे, परिस्थितियां ऐसे निर्मित की गईं कि वहां से लोग भागने लगे। श्री चमन की कविता 'किसे पता था' का एक अंश :-"भगाना था उन्हें हमें/भागे मिटाना था उन्हें हमें/मिटे घन-घोड़ों पर थी कसी/हमारी जीनें/अकस्मात् सुलगते चूल्हे/ढक लिए/बर्फ ने।"[8]

1990 में घाटी के गांवों/कस्बों/शहरों तथा दूर-दराज के इलाकों से परिवारों के परिवार हजारों की संख्या में जम्मू की ओर भागने लगे। इस स्थिति का चित्रण किया है कवि सोमनाथ वीर ने :-"नब्बे की गृहपीड़ा छाई, दुराचार,/भाग-भग भट, ब्राह्मण आए।/दक्षिण 'खन्नबल' के उत्तर 'खादनयार'/भाग भाग भट, ब्राह्मण आए।।"[9]

विस्थापन के प्रति जनसमूह की कोई प्रतिक्रिया ही नहीं थी। इसलिए भी क्योंकि शोषित वर्ग अल्पसंख्यक था, कवि राधेनाथ मसर्रत ने इस यातनाबोध का अहसास 'हम कुछ नहीं बोले' कविता से दिया है -"सात कदम चलाकर/हमें भेज

दिया गया वितस्ता के पार/हम कुछ नहीं बोले/आंखों पर पट्टी बांध/पांचाल पहाड़ पर से/दिया उतार/हम कुछ नहीं बोले।''[10]

कवि मोतीलाल नाज़ ने 'अंधेरा--उजाला' शीर्षक कविता में आतंक और आशा की असमंजस स्थिति का चित्रण ऐसे किया है :-''हम व्याख्या करें/तो आख़िर किस समय की?/अगर यह दिन है तो कहां/छिपा बैठा है प्रकाश?''[11]

कवि यह कहना चाहता है कि वह किस समय की व्याख्या करे, यानी वह आज की भयावह स्थिति का चित्रण करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। कवि प्रश्न उठाता है कि यदि आतंक की इस विस्फोटक स्थिति को दिन कहेंगे, तो प्रकाश की उपमा किसे दें। आतंकवाद तो अंधेरे का रूपक है और शांति प्रकाश का।

श्री नाज़ के शब्द चित्र आज के अनुभवों पर आधारित हैं, वे आज की परिस्थितियों में स्वयं को उलझा हुआ पाते हैं।

कश्मीरी कविता के एक दमदार कवि मोतीलाल साकी की नवंबर 1991 'मरसिया' नामक कविता प्रकाश में आई, जिसका हिंदी अनुवाद समकालीन भारतीय साहित्य के अक्तूबर-दिसंबर 1992 अंक में छपा। अनुवादक थे डॉ. रतनलाल शांत।

'मरसिया' साढ़े छह पृष्ठों पर छपी एक लंबी कविता है। इस कविता में विस्थापित कैंप के त्रासद भरे पलों का चित्रण है। एक ही तंबू में ठूंसे-सटे दस जनों के परिवार की दशा देखिए –''वह आठ फुट–आठ फुट का तंबू देख रहे हो ?/यह दस जनों के परिवार का महल है/बेटियां, बहुएं, बच्चे, बूढ़े, बाले सब ठूंसे-सटे बैठे हैं/और भट्ठी में जलते हैं जिंदा ही/लाज शरम पर्दा कुछ भी तो नहीं रहा/यदि ये सब गोली खाकर मरे होते/मुझे कोई दुःख न होता/पर इनका जिए जाना बड़ी यातना है।''[12]

जम्मू की तप्त धरती पर झुलस रहे विस्थापितों के पांव और स्थापित जीवन से खानाबदोशों की जिंदगी गुज़र-बसर करने वाले लोगों की गाथा है–'मरसिया'। घाटी से विस्थापन के बाद जम्मू से आर्थिक कारणों के एक और विस्थापन हुआ–रोज़ी रोटी की तलाश में। एक परिवार के सदस्य अलग-अलग दिशाओं में भटक गए :–''बेटों वाली मां है बुढ़िया है/छतनार चिनार सी फैली, पांच-पुत्र हैं/पांच दिशाओं में खोए हैं भटक रहे हैं/कोई कहां और जाने है कोई कहां/नहीं एक का पता, दूसरे की कोई भी नहीं ख़बर/एक रहा है चूस ज़हर बंजर मिट्टी का और/दूसरा कैद पड़ा है सर्प खड्ड में।''[13]

कवि ने 'मरसिया' की इस लंबी कविता में कश्मीर के इतिहास, वहां की सांस्कृतिक विरासत, रीति-रिवाजों को मूर्त्त कर दिया है, वहीं वह बूढ़ी मां को यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाता है :-''कि वहां उसका मकान नींव तक जलाकर राख/कर दिया गया है..../''[14]

इस विस्थापन में विद्यार्थी को भी कुछ कम नहीं झेलना पड़ा कि उनके लिए स्कूलों/कालेजों के दरवाज़े बंद हो गए और कैंप स्कूलों में पढ़ना पड़ा :–''आज नंगे आसमान के नीचे चिथड़े तंबू में/धूप में जलना और बारिश में सील जाना इनकी/नियति है।[15]

कवि का अपराध क्या है कि उसे घरों से भगाया गया। वह नदी से उसके निर्दोष होनी की गवाही मांगता है। कवि अर्जुन देव मजबूर, 'प्यारी नदिये बोल !' कविता में गा उठते हैं :–''मेरी स्मृति, मेरे हृदय और मेरी पवित्र भावनाओं को/कचोटता रहता है यहां तपती गरमी में/मेरी नदिये तू साक्षी है कि मेरा कोई कसूर नहीं।''[16]

'मरसिया' की तरह 'प्यारी नदिये बोल !' में भी कवि ने जम्मू की 'लू' का अहसास कराया है। इधर चमनलाल चमन अपने देश में रहते हुए भी घर से दूर रहने के कारण परायी जगह का अनुभव करते हैं :–''मैं भी ठिकाना किए हुए था/मेरा घर बसा भी था/इसमें दिया प्रज्ज्वलित था/उधार ज़मीन पर रहना उधार ही है/मैं अपनी चाहों को कैसे संयत करूं।''[17]

पुरानी परंपराएं कहीं खो गई हैं, वे जो हमारे मार्गदर्शक रहे, जिनके गीतों में कभी कश्मीर की संस्कृति डोलती थी, कहीं खो गए हें, सब कुछ के छिन जाने की व्याकुलता कवि प्यारे हताश को छटपटा रही है :–''खो गया अपना नामो-निशान भाइयो/कहां ढूंढ़े हम आशियाना भाइयो?/पलट पाएगी दिल में गर्मी कभी?/गया पुराना अब ज़माना भाइयो !/अरणि और हीमाल, लल्लेश्वरी/रहा 'जून' का भी न फसाना भाइयो।''[18]

कश्मीरी साहित्य के सूरदास वासुदेव रेह रुग्णावस्था के कारण बचपन में ही आंखों की रोशनी से वंचित रह गए। उनमें कविता के संस्कार जन्मजात थे, क्योंकि उनके घर साहित्यकारों का आना-जाना लगा रहता था। उनके दो कविता संग्रह 'मर्यन बबन यादू वोतुर और शबगरूद' प्रकाश में आए। रेह बाह्य वस्तुओं को देखने में तो असमर्थ हैं लेकिन वह अंत:चक्षुओं से वह सब कुछ देखने का सामर्थ्य रखते हैं जो कविता रचने के लिए जरूरी है। रेह के भीतर का कवि गा उठता है :–''रास्ता जो भटक गया उसका क्या करोगे तुम/जिसके सिर के ऊपर से गुज़र गया पानी/बौखलाया, उन्मत्त हो गया आकांक्षाओं के कारण/उसका क्या करोगे तुम।''[19]

कवि दीनानाथ नादिम स्वयं को थका और हारा हुआ महसूस करते हैं, क्योंकि आस-पड़ोस वीरान हो गया है, सन्नाटा इतना छाया है कि न तो कोई पंछी ही उड़ता है और न ही कोई कुत्ता ही भौंकता है। कवि का मन अशांत है वह किसी ऐसे स्थल की खोज में है, जहां उसे राहत के कुछ पल नसीब हों :–''इस सड़क पर/तुम भी थक गए हो/और/मैं भी थक गया हूं।/आंखों में दहकती है जैसे जंगल की आग/जैसे धू-धू हो रहा कोई अलाव ... कुछ तो हो/कब्रिस्तान ही दिखाई पड़ता कोई/कोई धंसी कब्र ही मिलती कहीं उसमें उतरते/चैन की सांस लेते।''[20]

इधर घाटी में अपने घरों में रह रहा कवि आतंकवाद के खिलाफ अपनी आवाज़ उठा रहा है। कश्मीर के इस मुस्लिम कवि को अपनी वाणी को मुखरित करने में काफी समय लगा। वह प्रारंभ के तीन-चार साल तक अपनी भावनाओं को उजागर नहीं कर पाया, क्योंकि उसे डर लग रहा था। आज वह आतंकवाद के विरुद्ध बोल उठा है, पर ऐसे कवियों की संख्या कम ही है। घाटी का यह कवि अपनी क्षेत्रीयता से उतना उभर नहीं पाया कि विस्थापन पर भी अधिक कुछ लिख पाता। वह केवल

कश्मीर के 'युग पलट' की ही बात करता है जहां सब कुछ उजड़ चुका है। 'क्या यहां कभी गुलाब खिलते थे?' कविता में कवि श्री म. ह. जफर कहते हैं :-''कब हुई प्रलय ? कब युग बीता ?/काली रात, उदास अंधेरा।''[21]

इसी कविता में कश्मीर की यथास्थिति का चित्रण कवि यूं करते हैं :-''नगर हो गए हैं उजाड़ और खंडहर बन गए हैं गांव/फाख्ताओं-कस्तूरों का बोलना है बंद/सिर्फ उल्लुओं का जमाव है हर कहीं/और भय है कहीं बोल न उठे पिद्दी !/जल कर राख हुई है पृथ्वी और आकाश पर बुन रहा है कोई/अनदेखी किरणों का जाल/पहर गए रात को सुनाई देती है गुहार/कोई है? अरे कोई है ?''[22]

ज़फर की तरह ही गुलाम नबी हाज़िर ने भी शहर और गांव की विस्फोटक स्थिति को उजागर किया है। नाज़िर ने व्यक्ति के ऐसे खौफनाक चेहरे का चित्र उभारा है जिसने सब कुछ तहस-नहस करके रख दिया :-''शहर में यह अंगारे फूंकता चलता है/गांव में रात के सायों को/बारूद से भरकर उड़ा देता है। .../आग लगाता है जलाशयों में/दहकाता है चिनारों की छांव को।''[23]

आज के समय का क्रूर यथार्थ यही है कि आदमी लक्ष्यहीन हो गया है और वह असुरों की संगत में जा मिला है :-''रंग फक्क है गर्वहीन।/कलम क़ी जगह रखते हैं वे छुरियां धंसा/मनुष्य असुरों की संगत में फंसा।''[24]

कवि नाज़िर आदमी के हिंसक स्वभाव से अपरिचित नहीं है। उन्होंने आदमी के दैन्य रूप को भी देखा है :-''आकाश में बादल का एक गोला प्रकट हुआ/और वह गोला फिर एक दैत्य में बदल गया/फिर उसमें आग लगी/वह काला स्याह हुआ।''[25]

श्री रहमान राही, कश्मीरी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। 'इल्हाम' कविता में आतंकवाद की आग में चट्-चट् कर जलने की वेदना :-''कौन लगा गया आग।/शहतूत के पत्तों के ढेर में/चट्-चट्-चट् ?''[26]

कवि राही के 'साज सुबहुक सादो (संगीत सुबह का) 'कलामे राही' कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। राही ने जिस गति से कश्मीरी कविताएं लिखी हैं, वह गति वे आतंकवाद या फिर विस्थापन के बारे में कविता लिखने के लिए नहीं बना पाए। उक्त कविता 'इल्हाम' के बारे में यह उल्लेखनीय है कि यहां 'शहतूत के पत्तों के ढेर में' आग लगाने का बिंब कमजोर बन पड़ा है, क्योंकि पत्तों के ढेर में आग लगाना एक सहज प्रक्रिया है। पतझड़ के मौसम से दरख्तों से पत्ते झरते हैं और सूखे पत्तों को इकट्ठा कर जलाया जाता है ताकि उसकी राख को ठंड के दिनों में कांगड़ी में डालकर तापा जा सके। यहां कवि को 'शहतूत के पत्तों के ढेर में' के बजाए 'शहतूत के पत्तों में' या फिर 'शहतूत में' का प्रयोग करना चाहिए था, जिसके द्वारा कविता का बिंब सशक्त बन पड़ता है।

कवि बशीर अतहर और शफी शौक ने शहर के बीभत्स चित्र को क्रमशः 'लावारिस लाश' और 'मैं और मेरा शहर' कविता में उकेरा है। कवि अतहर ने समय के सच को अधिक खुलकर व्यक्त किया है जबकि अतहर ने सांकेतिक भाषा का

सहारा लिया है। दोनों की संवेदनाएँ एक जैसी होने के बावजूद अभिव्यक्ति के स्तर अलग-अलग हैं। कवि अतहर की नज़र में शहर अब लावारिस लाशों का ढेर बन गया है:-''लावारिस एक लाश देखी/अंधियारे शहर का एक अंधकार-भरा कूचा/ उसी कूचे में एक लाश देखी/लावारिस एक लाश देखी।''[27]

आतंकवादी जिसकी चाहें उसकी हत्या कर देते हैं और मरने वाले का दोष बताते हैं 'मुखबिरी'। कवि ने लावारिस लाश की शिनाख्त कर ली है वह कश्मीर का ही एक सपूत था :-''पढ़कर एक बोला-/सचमुच दहशतगर्द था वह/कौम का दुश्मन, एक एजेंट/धीरे से दूसरा बोला-/अपने कश्मीर का ही एक लाड़ला था वह/जो आज फिर मरा !''[28]

अतहर की तरह शफी शौक भी अखबार पढ़ने की बात कर रहे हैं जिसमें सिवाय हत्याओं, बलात्कारों, दुर्घटनाओं की खबर के सिवाय कुछ विशेष नहीं छपता -''और बैठता हूं अखबार में पढ़ने/शहर की खबर/खबर दुर्घटनाओं की, युद्धों की, बलात्कारों की।''[29]

कवि शौक नगरीय संवेदना के कवि हैं और नगर में घट रही हर प्रमुख घटना को नज़र अंदाज नहीं करना चाहते। नगर के शोरोगुल भरे वातावरण, असुरक्षा के भाव को व्यक्त करने से नहीं कतराते :-''शोर की स्याह चादर को फाड़कर/आती है कोई कर्णभेदी चीख/शायद कहीं बंद खिड़कियों-दरवाज़ों के अंदर/किसी को लूट लिया है मौत की आंधी ने।''[30]

शफी शौक मज़हबी जुनून के कट्टरपन से उबरना चाहते हैं, वह सही मायनों में कवि की उस पदवी को पाना चाहते हैं, जहां कोई संकीर्णता, भेदभाव या परायापन नहीं है। इसीलिए तो उन्हें लाउडस्पीकरों का 'शोर' अर्थहीन लगता है जो दूसरों का जीना कष्टप्रद बनाता है :-''या कभी पगला जाता है कोई लाउडस्पीकर''[31]।

लाउडस्पीकर का पगला जाना, कश्मीर की पगलाई हवा की ओर संकेत है। इन्हीं लाउडस्पीकरों से अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को घाटी छोड़ने की धमकी दी गई थी और कट्टरपंथी नारे बुलंद किए गए थे।

अमीन 'कामिल' का मन आज की परिस्थितियों को देखकर बेचैन हो रहा है। पर वह अपने अधीर मन को यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि यदि वह आज का सामना नहीं कर पाए तो कल का कैसे कर पाएंगे, क्योंकि कल की स्थिति आज से अधिक खौफनाक होगी :-''रे अधीर मन ! कैसे सहोगे वह वक्त/जब ये सितारे बुझा देंगे सभी चिराग !''[32] ××× रे अधीर मन !/आज सह न पाओगे गर/ज़माने के जुल्म-ओ-सितम कल कहां जाओगे ?/रे अधीर मन !/कल कहां जाओगे?''[33]

कामिल, जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर कविता लिखना प्रारंभ किया था, आधुनिकतावाद के दौर में कविता की भाव कक्षा से जुड़े और शताब्दी के अंतिम दशक तक आते-आते क्रूर यथार्थ की अभिव्यक्ति करने लगे -''पत्ते वसंत के गिरे झर-झरे/धरती पर लगे लाशों के अंबार/पर्वत शिखरों के नीचे गहराई तक/घोर उदास हुआ प्रत्येक स्थल/हांगुल हिरन छटपटा उठे।''[34]

हांगुल–एक "डरपोक जानवर है। इसे कश्मीरी पंडितों के प्रतीकार्थ में लिया जाता है। 'हांगुल' का छटपटाना कश्मीरी पंडितों का छटपटाना है। यह छटपटाहट विस्थापन की है, जिस ओर कवि का इशारा है।

निराशा और अनिश्चित भविष्य के मुहाने पर आज कश्मीर है। आदमी ही नहीं प्रकृति भी आहें भर रही है। वितस्ता की दशा से व्याकुल रहमान राही कह उठते हैं :–"तुम क्यों शाम को दिन ढलने पर आहें भरती हो/मैंने बहुत बार तुमसे कहा, होगी सुबह, पनपेगी जिंदगी।"[35]

'मगर वितस्ता सोई हुई तो नहीं है' कविता में कवि राही ने अंधेरे युग में सुबह होने की बात कही है। कवि हताश अंधेरों के बीच 'हुस्न की गज़लें' गाता हुआ मुहब्बत की रक्षा करने को कहता है।

कश्मीरी कविता कड़वाहटों, आहों और हताशा की कविता है, जिसमें आशावाद कम और नैराश्य का भाव अधिक झलकता है। कश्मीरी कवियों और विस्थापित कवियों में मूल अंतर यही है कि विस्थापन की कविताएं आकांक्षाओं, सह-अस्तित्व और स्मृति-दंश की कविताएं हैं, घर की अकुलाहट की कविताएं हैं, जबकि कश्मीरी मुस्लिम कवियों ने आतंकवाद के कुछ पहलुओं का चित्रण तो किया है परंतु वहां हलीम की 'आरे की धार' और तोषखानी की तरह 'कातिल और किताब' की सोच को दर्शाने वाली कविताएं नहीं मिलतीं। एक सन्नाटा मिलता है, जहां कविता घर के दरवाज़े से बाहर निकल कर गली और सड़क का जायज़ा नहीं लेती वरन् कमरे के रोशनदानों से झांककर बाहर की प्रदूषित हवा और कमरे में बंद पगला गई। लाउडस्पीकरों की कर्णभेदी आवाज़ों के बीच ही फंसी है। कश्मीरी विस्थापन कविता में बाहर का दृश्य देखने के लिए न तो कोई खिड़की और न ही कोई दरवाज़ा ही दीवार बनकर खड़ा रहता है बल्कि ज़मीन के धरातल से लेकर आकाश की असीमताओं तक कवि-मन दिल की गहराइयों तक पहुंचता है, क्योंकि कविताएं तंबुओं के खुले वातावरण में डोलती हैं। कश्मीरी मुस्लिम कवियों और विस्थापित कवियों के काव्य में जो अंतर लग रहा है, वह केवल वैचारिक नहीं वरन परिस्थितिजन्य भी है। शायद परिस्थितियां ही कश्मीरी मुस्लिम कवियों को ऐसी कविताएं लिखने के लिए बाध्य करती हों जिनमें आतंकवाद के विरुद्ध हमला नहीं है, न विस्थापन पर कोई तीव्र प्रतिक्रिया।

संदर्भ

1, 17 शीराजा/जून-जुलाई 1996.

2, 4, 9, 12, 13, 14, 15, 18, 19, 22, 24, 25, 26, 29, 30, 31, 34 समकालीन भारतीय साहित्य/अक्तूबर-दिसंबर 92.

10, 11, 23 (वही) जनवरी-मार्च 1993.

3, 20, 21, 27, 28, 32, 33 (वही) जनवरी-फरवरी 1998.

5, 6 पांचजन्य (कश्मीर अंक)/10 अप्रैल 1994.

7, 8, 16 आज की कविताएं (विस्थापन पीड़ा अंक) नवंबर-दिसंबर 1993.

परिचर्चा

आतंकवाद, संस्कृति एवं सभ्य समाज

शांति और अहिंसा की पक्षधर शक्तियां एकजुट हों

गजानन पांडेय

सारा संसार मेरा परिवार है, परहित सरिस धर्म नहीं दूजा, अहिंसा परमो धर्मः, सत्यमेव जयते, बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय की नीति में विश्वास करने वाले, इन्हीं के लिए भारत संसार में विख्यात है--उसकी पहचान के यही आधार-स्तंभ हैं।

भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहां विभिन्न भाषा, जाति व धर्म के लोग एक साथ रहते हैं। परंतु कहां से इस वातावरण में वह जहरीली हवा फैल गई जिसने अनेकता में एकता के महल को ढहा दिया। आपसी प्रेम, सद्‌भाव और विश्वास का स्थान घात-प्रतिघात, अविश्वास व कट्टर सांप्रदायिकता ने कैसे ले लिया ? इस पर जब हम विचार करते हैं तो हमें सहज ही विश्वास नहीं होता कि समाज में यह बदलाव कैसे आ गया। परंतु सत्य तो यही है कि आज सारा समाज धर्म, जाति और ओछी मानसिकता की संकीर्ण विचारधारा में बंटकर रह गया है।

छोटी सोच, गहरे स्वार्थ के दबाव में—मजहबी अलगाव ने लोगों को एक-दूसरे से दूर कर दिया है। एक ओर जहाँ विदेशी सभ्यता की चकाचौंध से हम प्रभावित हुए हैं वहीं मीडिया द्‌वारा परोसी जा रही सामग्री ने संस्कृति पर सीधा आक्रमण किया है। ऐसे में मात्र अर्थलिप्सा, स्वहित व जुनूनी उन्माद से ग्रस्त आतंकवाद ने समाज की शांति व जीवन-मूल्यों को तार-तार कर दिया है। आतंक, अशांति, मजहबी संकीर्णता पर आधारित इस आंदोलन ने--देश की प्रगति व विकास के चक्र को जरूर धीमा कर दिया है। अब हमें देश के भीतर ही इस उन्माद से आए दिन दो-चार होना पड़ता है। हमें पता ही नहीं चल पाता कि इनकी अगली चाल क्या होगी ? कौन इनके निशाने पर होगा। आज आतंकवाद हमारा ऐसा शत्रु है जिसे हम वैसे ही छोड़ नहीं सकते क्योंकि सभ्य समाज में आतंक का क्या काम ? अतः आतंकवाद के खिलाफ उन सभी शक्तियों को एकजुट हो जाना चाहिए--जो शांति और अहिंसा की पक्षधर हैं--जिनके आगे है प्रगति का स्वर्णिम मार्ग—परंतु लक्ष्य उतना ही कठिन एवं संघर्षपूर्ण! इन अराजक तत्वों, घृणित मंशा रखनेवाली शक्तियों को हराकर ही हम यह जंग जीत सकते हैं।

आज आतंकवाद से सभी त्रस्त हैं—इसने विकास की गाड़ी की गति को धीमा कर दिया है—क्योंकि ये शक्तियां झुंझलाई हुई हैं कि--क्यों कोई देश प्रगति करे। वे हमें आपस में तोड़ना व बांटना चाहती हैं—हमें उनके इरादों को चकनाचूर कर देना है—इसी मार्ग द्‌वारा हम उनके हौसलों को पस्त कर सकते हैं। इसके लिए बदलते परिवेश में राजनैतिक माहौल में एक व्यापक रणनीति की आवश्यकता है—जिसमें आतंकियों की दोहरी चाल, षड्‌यंत्र का उत्तर हो। जिसमें जहां उनके लिए कड़े दंड का प्रावधान हो वहीं उनके अभियान को नेस्तनाबूद करने की क्षमता हो। इसी लक्ष्य एवं संकल्प से हम अपनी संस्कृति को पुनर्जीवित कर लोगों के दिलों को जोड़ सकेंगे।

राजतंत्रीय मानसिकता में बदलाव जरूरी

डॉ. बैजनाथ प्रसाद

आतंकवाद की मूल प्रकृति हिंसा है। राजतंत्रीय व्यवस्था में राजा और उसके पोषकों द्वारा धर्म, वर्ण (जाति), लिंगभेद, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर जनसामान्य पर किए जाने वाले अत्याचार एक विशेष प्रकार का आतंकवाद था और इसका सिलसिला हजारों वर्षों तक चलता रहा। आज का युग प्रजातंत्र का है और सभी प्रजातांत्रिक देशों के संविधान में समानता के भाव को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। जो समुदाय नए युग की इस मांग को समझने के लिए तैयार नहीं है, वह इस समतावादी नई व्यवस्था की जड़ खोदने पर तुला है, आतंकवाद ऐसे ही समुदाय द्वारा फैलाया जाता है। लादेन को बनाने में अमेरिका की भूमिका और सोवियत संघ का विभाजन, लादेन द्वारा 11 सिंतबर, 2002 को अमेरिका पर आक्रमण, भारत में भिंडरावाला को बढ़ावा और पंजाब में नरसंहार, बिहार में माओवादियों और रणवीर सेना के बीच संघर्ष, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में माओवादियों के हमले, आंध्र प्रदेश में नक्सलवाद, जम्मू-कश्मीर में इस्लामिक कट्टरवाद, असम में बोडो लैंड के नाम पर होने वाली हत्याएं, पाकिस्तान में धार्मिक उन्माद, नेपाल में माओवाद, श्रीलंका में तमिल लिबरेशन फ्रंट इत्यादि के विकास में इस समुदाय का भारी योगदान है। यह समुदाय आज भी राजतंत्रीय मानसिकता को ढोने में लगा है और संविधान प्रदत्त समानता को मिटाने के लिए हिंसा फैला रहा है। इसलिए जब तक इस समुदाय की मानसिकता में परिवर्तन नहीं होता, तब तक आतंकवाद का अस्तित्व समाप्त नहीं हो सकता।

शिक्षा, रोजगार और जनता की बुनियादी जरूरतों का दुश्मन है आतंकवाद

ब्रह्मपालसिंह महरौल

आतंकवाद का शिकंजा दिनोंदिन कसता ही जा रहा है। आतंकवाद के साए में तमाम दुनिया सिसक रही है। दरअसल पूंजीवादी व्यवस्था की ही देन है आतंकवाद, जिस तरह शोषण, भुखमरी, गरीबी, निरक्षरता, उत्पीड़न आदि हैं। एक वर्ग शोषण करता है दूसरे वर्ग का। इसी तरह एक वर्ग, संप्रदाय या राष्ट्र दूसरे को आतंकित करता है। वर्ग-संघर्ष तो सामाजिक बराबरी के लिए, बेहतरी के लिए होता है लेकिन आतंकवाद बरबादी के लिए। और यह बरबादी सभ्यता, संस्कृति, अर्थ, मानवीय मूल्य आदि हर क्षेत्र में होती है। पूंजी और साम्राज्य की स्पर्धा है। अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर विधर्मियों के साथ बर्बरतापूर्ण ढंग से पेश आना, उनका कत्ल करना, लूटपाट करना और अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना ही उनके धर्म पर खरे उतरने की कसौटी माना जाता रहा है। अलगाववादी सांप्रदायिक ताकतें पूरे विश्व में पनप रही हैं, भले ही उनका स्वरूप बदल गया हो। ढंग या तौर-तरीके नया-नया जामा पहनकर पेश हो रहे हैं। धर्म और धन का नंगा नाच फिरकापरस्तों द्वारा पूरी दुनिया

में हो रहा है। बच्चे, बूढ़े, नौजवान मर रहे हैं, औरतों की अस्मत लूटी जा रही है। दौलतमंद और उनके सिपाही अपने ही उन भाइयों को मार रहे हैं जो गरीब हैं, बेरोजगार हैं। उनसे ही गतिविधियों को अंजाम दिलवा रहे हैं जो गरीब हैं, बेरोजगार और उत्पीड़ित हैं। इनका ध्येय रोजी-रोटी पाना है जबकि उनका ध्येय दौलत व साम्राज्य हासिल करना है। शिक्षा, संस्कृति, रोजगार, मानवीय मूल्यों, व्यापार, राजनीति आदि में आतंकवाद का बोलबाला है। इसके लिए सभी को एकजुट होकर आतंकवाद को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा ताकि आतंकवाद पर जो पैसा व्यर्थ हो रहा है वह रोजगार, शिक्षा और जनता की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में किया जा सके।

आतंकवाद : सभ्यता एवं संस्कृति पर कुठाराघात

मंजु दवे

आतंकवाद एक ऐसा विष है जो हमारे देश की सुख शांति एवं नींव को खोखला कर रहा है। मनुष्य सुख शांति से जीवन-यापन करना चाहता है, परंतु कुछ स्वार्थी तत्व अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति हेतु समाज में हिंसा, मारकाट फैलाकर आतंक पैदा करने का प्रयास करते हैं। प्रत्यक्ष युद्ध के बिना जन-मन बिना सत्ता पर अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भयप्रद वातावरण के निर्माण करने का सिद्धांत आतंकवाद या उग्रवाद है। हमारे देश की संस्कृति एवं सभ्यता संपूर्ण विश्व में पूजनीय, माननीय रही है किंतु आतंकवाद के ये विष-बीज विविध रूपेण पुष्पित पल्लिवत हुए हैं, इससे आम जनता त्रस्त है, कर कुछ नहीं सकती।

संपूर्ण विश्व आतंकवाद की चपेट में आया हुआ है। आतंकवादी गुटों के अपने राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय संगठन बने हुए हैं जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नैतिक मूल्यों की परवाह न करते हुए सार्वजनिक हिंसा तथा राजनीतिज्ञों की हत्या या अपहरण का सहारा लेकर सभ्यता पर कुठाराघात कर रहे हैं। पिछले कुछ दशकों से भारत में आतंकवाद के पैर फैल गए हैं इसका उदय 1967 में भारत के उत्तरी छोर के नक्सलवाद से शुरू हुआ। 1974 तक इसका इतिहास विनाश की कहानी है और बेगुनाह हिंसा के शिकार की कहानी है और बेगुनाह हिंसा के शिकार लोगों की अभिशप्त आत्मा की चीख-पुकार ने आपातकाल की घोषणा कर दी जिसने जन-मन से त्राहिमाम् त्राहिमाम् कहलवाकर छोड़ा। असंख्य बेगुनाह लोगों की हत्या की गई। बसें रोककर लोगों की हत्या करना, रेलगाड़ियों को बम से उड़ाना, घरों, बाजारों, सार्वजनिक स्थानों में बम आदि रखकर बेगुनाहों का खून बहाना आतंकवाद के ही दुष्परिणाम हैं। पंजाब से आंतकवाद पर नियंत्रण पाने में ज्यादा सफलता नहीं मिल पा रही है। यहां होने वाले आतंकवाद में भाड़े के युवकों को आतंकवादी गतिविधियों का प्रशिक्षण देकर यहां भेजा जाता है। आतंकवाद का पल्लवित होना सभ्यता एवं संस्कृति पर कुठाराघात है। बुरे काम करने तथा अपना पेट पालने के लिए मानव धर्म का त्याग करके असामाजिक कृत्य करके विनाश का तांडव देख रहा है। कोई भी आतंकवादी मां के पेट से पैदा नहीं होता। भुखमरी, मंहगाई, बेरोजगारी जैसे अति घिनौने तत्व इसे पनपाने में सहायक सिद्ध होते हैं। विदेशी सभ्यता की ओर झुकाव बढ़ गया है, हमारी सभ्यता आतंकवादी सत्ता के लिए खुली चुनौती है। कानून

और व्यवस्था की शव-रूप में परिणति है। निरीह नागरिकों के जीवन-जीने के अधिकार का अपहरण है। राष्ट्र को अस्थिर कर उसे परतंत्र करने का दुश्चक्र है।

इस राष्ट्रद्रोही और निरपराध लोगों की हत्या करने वाले तथा देश का अनुशासन भंग करने वाले आतंकवाद को सत्ता के दबाव से ही दबाना होगा। 'विषस्य विषमौषधम्' नियम को अपनाना होगा। नैतिक मूल्यों को कायम रखने हेतु हमें विदेशी सभ्यता को त्यागना होगा तभी हमारी संस्कृति व सभ्यता बरकरार रहेगी। विजयश्री हमारे चरण चूमेगी। भारतीय जनता सुख और चैन की सांस लेगी, राष्ट्र फलेगा-फूलेगा, उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा।

शोषणमुक्त और समतामूलक समाज की स्थापना आवश्यक

डॉ. सरोजकुमार त्रिपाठी

आतंकवाद के पक्ष में भी कोई न कोई प्रेरणा होगी। कदाचित् यह प्रेरणा होगी विधिक तरीके से अपनी न्यायोचित मांग न मनवा पाने की विवशता। ऐसी अनेक परिस्थितियां हैं, जहां न्याय या तो तंत्र की शिथिलता के कारण या बदनीयती के कारण नहीं मिलता। एक ही वस्तु या क्षेत्र पर अलग-अलग व्यक्तियों या समूहों के दावे भी इसका कारण हैं। लेकिन एक कारण निहित स्वार्थ भी है। निहित स्वार्थ वाले नेता भी ऊंची-ऊंची और बड़ी-बड़ी बातों की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। उच्च आदर्शों का हवाला देकर मासूमों को बलि का बकरा बनाया जाता है। क्षेत्रगत, जातिगत, संप्रदायगत आदि असहिष्णुता और अहंकार भी इसका एक मुख्य कारण है।

आतंकवाद हिंसा का विकृत रूप है। आतंकवाद का प्रयोजन हिंसा द्वारा दहशत उत्पन्न कर सत्ता और समाज को भयाक्रांत करना और अपनी वांछित स्थिति उत्पन्न करना है। इस हिंसा में पता नहीं कितने मासूम-निर्दोष लोग बलि चढ़ते हैं। सभ्य और संस्कृत समाज में तो हिंसा के लिए भी स्थान नहीं है, आतंकवाद तो और भी गर्हित है। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में विश्वास करते हुए निरहंकार, निःस्वार्थ और ईमानदारी पूर्ण आचरण वह प्रशस्त भूमि है, जहां आतंकवाद के पनपने के लिए जगह नहीं। दूसरे शब्दों में कहें कि शोषणमुक्त और समतामूलक समाज की स्थापना आवश्यक है। इसके साथ ही असहिष्णुओं से निपटने के लिए व्यक्ति और व्यवस्था में दृढ़ता एवं सजगता भी होनी चाहिए।

आरजू

अर्जुन हासिद

इस मुल्क में किसी की भी क्या आबरू रहे
अब आप सब तो आप हैं, हम तू के तू रहे।
मुंह फेर के खड़े हैं न पहचान अब रही
बैठोगे पास आके, अगर गुफ्तगू रहे।
गर दूरियां हैं दर्द गुनाहों का भी तो है
मिल जाए आंख, आंख में हसरत की बू रहे।
इन वहशतों से मर्ज़ तो बनते हैं लाइलाज
इक टीस चीखती रहे, बहता लहू रहे।
धरती न आसमान, नहीं गांव थे, न पेड़
दिल चाहता है, फिर जो कोई जुस्तजू रहे।
सबका मिजाज और, ज़माना बदल गया
आंगन में एक फूल हो, घर में बहू रहे।
'हासिद' बनेगी बात अभी, या तो फिर कभी
अपनों को अपना कहने की तो आरजू रहे।

हर चंदन का पेड़

अनुराधा बनर्जी

यकीन होता जा रहा है/हर चंदन का पेड़
गिरवी रख चुका है अपनी ठंडक/सांपों की सांस में।
वह हार चुका है अपनी लड़ाई/सांपों के साथ
जो उसके तन से धीरे-धीरे/सोखते जा रहे हैं
उसका अमृत--उसकी पहचान !
मैंने कसम खाई थी/मैं मातम नहीं मनाऊंगी
सांपों से पटे इस जंगल में
मैं तो इस ज़हर को न जाने कब से/फेफड़ों में भर रही हूं
और दंश से छलनी हुई इस खाल को
ढो रही हूं सिर झुकाकर
पर, जब तुम्हारे जिस्म को भी/वह नीली हवा, छूने लगी है
सांपों के दंश तुम्हारी खाल को निशाना बना चुके हैं
तब मैं अपने बूढ़े यकीन को दफनाकर

शायद एक बार उठाने जा रही हूं
अपने लिए/ईमानदारी के लिए।
नोचकर अलग करने जा रही हूं
अपने एक नायाब चंदन के जिस्म से /सांपों की लपेट।
मैं शायद अपनी नाकारा लड़ाई में
ज़हर से अमृत को अलग कर रही हूं।

अक्षरों को जीवंत रखना है

अला

सांसों के साथ ही अक्षरों की शुरूआत हुई
फिर अक्षरों पर थोपी गई पाबंदियों से/हम क्यों डरे ?
अक्षरों को भुला दें,
तो क्या जीवन जीवंत रह पाएगा ?
जीवन का संबल अगर भूल जाएं हम,
फिर भी क्या अक्षरों से दूर हट पाएंगे कभी ?
सजाया था हमने आसमान को अक्षररूपी नक्षत्रों से,
जमीन में बोआई की हमने/अक्षररूपी बीज़ों से
फिर अक्षरों पर थोपी गई पाबंदियों से
हम क्यों डरें ?
बांध रखा उसने अक्षरों को कठघरों में
तो व्यंग्य बाणों से वार भी तो किया हमने।
खून से लथपथ/अक्षरों को किया उसने,
तो खून में डुबोकर अक्षरों के झंडे भी फहराए हमने।
हमारा अस्तित्व ही अक्षरों से जुड़ा है,
ज़िंदगी हमारी अक्षरों से जुड़ी है।/तो नए सिरे से आज
अक्षरों पर थोपी गई पाबंदियों से हम क्यों डरें ?
ज़िंदगी को पीछे हम ढकेलें ही क्यों ?
आखिर डरना उसे है अक्षरों से
तभी पाबंदियां लगाता है वह अक्षरों पर।
चुप नहीं रहा जाता भैया/चुप नहीं रहा जाता।
अब/अक्षरों को जिलाना है हमें, जीवन को जीवंत रखने के लिए
अक्षरों में आग फूंकनी है हमें, पाबंदियों को जलाने के लिए।

कबूतर

अशोक तिवारी

सुबह-सुबह बारिश और तूफान से
खुद को बचाने की कोशिश में कबूतर
बैठा है खुली खिड़की पर सिमटकर
और देख रहा है गुजरते तूफान के रुख को
पूरी तन्मयता से भरता हुआ हवा
फुलाता हुआ अपने पंखों को/ताकता टुकर-टुकर
बूढ़ी आंखों की तरह रखता हुआ नज़र
चौकन्ना आंखों से चारों ओर
महसूस करता अपनी छाती पर/घिरते आ रहे मौसम का दबाव
भरता हुआ अपने अंदर क्षोभ और गुस्सा
बसेरे के उजड़ जाने का/याद करता हुआ रात का सपना
पानी पर तेल की तरह/तैर रहा था जब
बच्चों की मिमियाती आंखों में ख़ौफ़
सुदूर पश्चिम से चलने वाली खूनी हवाएं
ले जा रही थीं/उसके बच्चों के पंखों को उड़ाकर
गिरते-पड़ते बच्चों की यादों को लेकर
वो देखता है दूर आसमान से गिद्धों को आते हुए
प्रशिक्षित हुए हैं जो अमेरिकी कैंपों में/कृत्रिम बारिश के लिए
जिनके मुंह पर खून लगा है।
कबूतर अपलक उड़ने की मुद्रा में मुड़ा है !

मेरा देश स्थिर नहीं है

अशोक मजूमदार

मेरा देश स्थिर नहीं है/संसद में तीव्र विस्फोरण
विश्वासघाती पड़ोसी है/बातों में जिसकी मित्र का दिखावा
अनेक मृत्युओं को साथ लेकर/जीने की लड़ाई हमारी
आर. डी. एक्स फटता है/नाचता है धर्मांध कसाई ...।
हाहाकार होता है चारों ओर/आगे और पीछे भी है आग
लिफाफा खुलने का भय/कहीं मृत्यु तो छुपी नहीं है उसमें ?

अविश्वास की काली घटा छाई है/विश्वास के आसमान पर
जलती हुई लाशों की गंध से/वायुमंडल भरा पड़ा है ...।
दुनिया के मानचित्र में/मानवता के शत्रुओं का स्थान नहीं है
आंख बंद होने पर लगता है/खून-भरे आकाश से
गिर पड़ता है श्वेत कबूतर।
हिरोशिमा दिवस की शपथ/हास्यकर लगती है आज
चैन की प्रार्थना/लेकिन लंबी होती है तनाव की रात .....।

धारावाहिक

असीम कृष्णदत्त

राष्ट्रपिता के अंधे होने से
'महाभारत' को टाला नहीं जा सकता
पूरा राष्ट्र ही बना हुआ है आज कुरुक्षेत्र
चल रहा है कबंध का नाच।
भगवान श्रीकृष्ण आज कितनी ही
तत्वज्ञान की बातें क्यों न सुनाएं
'शरीर और आत्मा' के गूढ़ संबंधों की बात
केवल एक शैतानी चाल है।
दुर्योधन और शकुनी चौपड़ के खेल में
पासे पर पासा फेंक रहे हैं
चतुर ही बचा सकते हैं स्वयं को,
निरीहों का होगा लाक्षागृह दाह
विराट की सभा में हैं आज पूरे पांच वृहन्नला नर्तक
शमी वृक्ष पर छुपा दिए गए हैं घातक हथियार।
युग-युगों से युद्ध होते रहे हैं,
आज भी और कल भी युद्ध होंगे
जिसकी भुजा में है शक्ति, है सत्ता उसी की
यह सर्वविदित इतिहास है,
युद्ध या फिर आतंक/मानव सभ्यता की हैं ये अवैध संतान
निस्सहाय राष्ट्र संघ है आज/तृप्त काम नागर-केलि से।
बारूद की जली बू में नई पीढ़ी लेती है सांस
राहत शिविरों की छतों पर
फहरती हैं हमारी विजय पताकाएं।

आतंक आयात नहीं होता

आशा जोशी

सत्येन,
शायद यही नाम था उसका।
वैसे क्या फर्क पड़ता है नाम से ...
सत्यकाम, सत्यवीर, सत्यप्रकाश कुछ भी हो सकता है।
सच कहने के साहस में मार दिया गया सत्येन।
सच का पुरस्कार इससे बढ़कर क्या हो सकता है ?
आतंक ! केवल बाहरी तत्वों का नहीं होता।
आतंक, आयात भी नहीं होता।/हमीं बोते हैं उसका बीज
भ्रष्टाचार, बेईमानी, स्वार्थ और झूठ के रूप में।
सत्ता के गलियारों के इर्द-गिर्द पनपता है यह।
सत्ता आंखें मूंदे बैठी रहती है/आतंक का पंजा फैलता रहता है।
न जाने कितने सत्येन मार दिए जाते हैं
सच बोलने या जुबान खोलने की एवज में
आतंक की बिसात, पहले 'घर' के अंदर बिछती है,
फिर बाँह पसारकर/'बाहर' को भीतर बुलाती है।
जुबान खोलने की जुर्रत करेगा कौन
अगर सत्येन मरता रहा तो !

नई सदी

आशारानी व्होरा

राह से भटक गई चेतना, नई सदी तेरा क्या होगा ?
पग-पग कंटक-चुभी वेदना, नई सदी तेरा क्या होगा ?
गुलछर्रे, सिसकी, साथ-साथ, नई सदी तेरा क्या होगा ?
घूंघट, बिकनी, शह और मात, नई सदी तेरा क्या होगा ?
सपने सब किरच-किरच बिखरे, नई सदी तेरा क्या होगा ?
तेवर कुंठा-आक्रोश भरे, नई सदी तेरा क्या होगा ?
यदि नहीं राष्ट्र का पतझर है, तो सदी तेरा स्वागत होगा।
'मिलेनियम' नहीं, संवत्सर है, तो सदी तेरा स्वागत होगा।
यदि यह वसंत का पक्षधर है, तो सदी तेरा स्वागत होगा।
यदि भूल-सुधार का अवसर है, तो खूब-खूब स्वागत होगा।

वही मेरा नगर होगा

इरम महबूब

आधा अंधकारमय/आधा बुझा-बुझा सा
संसार के मानचित्र पर/अगर कोई रंग होगा
वही मेरा नगर होगा ! वही मेरा नगर होगा !!
जहां जन-जन के मुख-दर्पण में
भविष्य की उज्ज्वल आशा के बजाय
बहशतों के साये होंगे/वही मेरा नगर होगा ! ...
जहां गली-गली से
आवारा कुत्तों के रुदन की आए आवाज़
और जहां कब्रों की भांति
खिड़कियां व दरवाजे बंद होंगे
वही मेरा नगर होगा ! ...
जहां प्रत्येक आत्मा में पल-पल
ब्रस्टन के कई साज़ गूंजते हैं
और जिस धरा पर ईरानी कालीनों की भांति
रक्त रंजित शव बिछे होंगे/वही मेरा नगर होगा ! ...
धरती मां का तिरस्कार
करने वालों के शासन में
जीवन से बढ़कर/जहां मृत्यु का मूल्य
पचास हज़ार प्रति शव होगा/वही मेरा नगर होगा ! ...
आधा अंधकारमय/आधा बुझा-बुझा सा
संसार के मानचित्र पर/अगर कोई रंग होगा
वही मेरा नगर होगा ! ...

सांप्रदायिक दंगों के दिनों में

उषा उपाध्याय

दिन में किसी हिंस्र पशु की तरह
आंखों में खून भरे/चीते की तरह लपकता हुआ,
जुनून से जबड़ा फाड़कर
कराल पंजा उठाता मेरा यह शहर
रात को शांत हो जाता है हिचकी खाते-खाते
मां की गोद में सो गए बच्चे की तरह।

मृत्यु से अतीत अक्षर

ए. मुरली कृष्ण

सुना है–एक वीर अमरत्व को प्राप्त करता है
तो, दस वीरों का जन्म होता है।
पाश !* तुम मरे ही कब कि तुम्हें दुबारा जन्म लेना पड़े।
जिनकी खातिर तुम्हारा जन्म सार्थक हुआ
उनके लिए तो तुम जीवित हो ही।
जान चुका हूं –आतंकवादियों की गोलियों ने तुम्हारी आहुति ली।
लेकिन, उनके प्राण हरने, सदा उनके गले पर तलवार-से झूलनेवाले
तुम्हारे अक्षर तो औज़ार-समान हैं ही।
अपनी ज़मीन की गेहुंए रंग की मिट्टी में,
जिन अक्षरों के बीज़ तुमने बोए
उनका गर्जन तो कविता गगन में गूंज उठा ही।
तुम्हारे दर्शन की चाह जिन्हें है उनके सामने तुम प्रत्यक्ष हो ही।
लोगों के दिमागों में–अपनी भौतिक देह की चिता-भस्म बोकर
उन्हें जिलाया तो तुमने ही।/अब है किसी की हिम्मत
कि तुम्हारे मरण का ढिंढोरा पीटता फिरे ?

बुद्ध की हंसी

एस. जी. सिद्धरामय्या

एक घर है यह भूमि।
हाथ की उंगलियां एक-दूसरे की पूरक !
नित्य सत्य तत्व 'जंगमत्व'**
अपने को बड़ा मानकर बहता पानी पीने को
किसकी अनुमति की अपेक्षा रखता है ?
आखिर क्या हुआ एक हजार फुट के सौध 'विश्व व्यापार' का ?
हिंसा से दुनिया जीतने का सच/किस धर्म का आधार है ?
इराक, क्यूबा, कंधार, कश्मीर ... मां की कोख की तड़प

**23मार्च 1988 को श्री भगतसिंह फांसी पर चढ़ाए गए। 23 मार्च को ही कवि अवतार सिंह पाश पर आतकवादियों ने गोली चलाई। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखी गई कविता।*

***जो चलता रहता है।*

अणु-अस्त्रों का लाख-गृह बनाने की निर्दयता भला कैसे ?
क्या मौत, दर्द, संवेदना ने झकझोरा नहीं ?
बुद्धम् शरणम् गच्छामि ... संघम् शरणम् गच्छामि।
पूरब से रोज मुस्कुराता सूरज।

धर्म की विकृति

कृष्णकुमार विद्यार्थी 'नूर'

धर्म सभी धारक शक्तियों में है/सभी धारणाओं में निहित है धर्म।
ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है मनुष्य,
मनुष्य का सहज स्वभाव है धर्म।
जब कोई धर्म-विशेष नहीं था
तब भी यही था धर्म का निहित मर्म।
मानव-आत्मा की पवित्रता/मानव-हृदय का आश्रय है धर्म
मनुष्य और धर्म, सहजीवी हैं, सहभागी हैं, सहयात्री हैं।
न धर्म मनुष्य से बड़ा है, न मनुष्य धर्म से।
अपने मूल्यांकन की हदों को पारकर
कोई भी तथ्य अपनी अस्मिता, अपना महत्व खो देता है
वह भूल साधारण मनुष्य नहीं करता।
यह भूल करते हैं—पंडित, मुल्ला, पादरी, राजनीतिज्ञ।
ये सारे लोग, धर्म को नहीं उसके आश्रय को बड़ा बना देते हैं।
तब एक किताब ज्ञान से बड़ी बन जाती है,
एक घड़ी समय से अधिक मूल्यवान बन जाती है
और मूर्तियां ईश्वर से ऊपर।
धर्म को रूप और नाम का जामा पहनाकर
इस तत्व को अहंकार से आभूषित करते हैं।
तब माला, तस्बीह से उलझ जाती है,
मंदिर मस्जिद पर हावी हो जाता है,
राम और रहीम दुश्मन नज़र आते हैं।
धर्म/प्रेम और करुणा का नहीं
आततायी और शैतान का कवच बन जाता है।
लेकिन धर्म तो सबसे बड़ा धारक तत्व है
और सभी पवित्र आत्माओं में निहित है धर्म।

कारगिल

कृष्ण राही

रास्ता तो दिल्ली और लाहौर का था/कारगिल तक कैसे पहुंचा !
वादा तो दोस्ती का था दुश्मनी तक कैसे पहुंचा !
मुहब्बत से मुस्कुराता चेहरा नफ़रत में कैसे बदला ?
तुम्हारा और मेरा अतीत वही है/वर्तमान भी जो तुम्हारा है वही मेरा
एक ही इतिहास और सभ्यता से जुड़े हुए हैं
मात्र किसी दुर्घटनावश बिछुड़े हैं।
घर तो मेरा भी है, तुम्हारा भी/मेरा मिटाकर क्या अपना बनाओगे
मुझे चिता में जलाकर/अपनी मज़ार पर दीप जलाओगे ?
तुम्हें तुम्हारा मज़हब मुबारक/मुझको मेरा धर्म है प्यारा।
शत्रुता धर्म और मज़हब की नहीं/जंग भी तुम्हारी और मेरी नहीं है
युद्ध तुम्हें और मुझे करना है पर उनसे
जो सिरफिरे हैं/तुम्हारे और मेरे शत्रु हैं
धर्म और मज़हब के नाम पर हमें परस्पर लड़वाते हैं
और हमारे साथ/हमारे धर्म और मज़हब पर भी वार करते हैं।

सभ्यता और आतंक

कैलाश नीहारिका

सभ्यता—एक मासूम हठी औरत-सी टहलना चाहती है
सड़कों पर, मैदानों में, पर्वतों की ऊंची-नीची धरा पर,
जिजीविषा से भरपूर तटों पर/किसी रोएंदार कुत्ते की जंज़ीर थामे।
पर कुछ ही कदम चलकर/गुर्राते खूंखार कुत्तों से घिरी
लुकती-छिपती वह किसी खंडहर की ओट लेती है।
निर्जन खंडहर में कुछ कबूतर हैं अपनी गुटरगूं में लीन
कुछ चमगादड़ हड़बड़ाते, पंख डुलाते
विकल, सुरक्षाहीन, सहमे-सहमे
और बहुत-सी मकड़ियां सदा सक्रिय...भुतहे जाले बुनतीं
अब, सभ्यता क्या करे अपनी स्मृति का, दृष्टि का !
उस दृष्टि में सुदूर मैदानों पर बिछी
अठखेलियां करती धूप है पौधों को सहलाती हवा
और कोई टेर लिए झूमते पेड़-पत्ते
यह दृष्टि अपना संकल्प दोहराती है/पर कैसे दर्ज करे वह

गुर्राते कुत्तों और आतंक के खिलाफ/उसके प्रेम की गुहार
जो जोड़ता है सबको इतने महीन सूत्रों से
कि दिखते नहीं वे सूत्र/लेकिन टूटने पर
अशांत, असुरक्षित छटपटाते हुए हम
चमगादड़ से विकल/अपने-अपने खंडहर में
असहाय परिक्रमाबद्ध हैं।

क्या है युद्ध ... ?

खैरुल्ला नियाज़

युद्ध-भूमि से वापस न आए
सुंदर, नादान, जिगर के टुकड़ों को
जन्म देने वाली माताओं से पूछो...युद्ध क्या होता है ?
वे ही बताएंगी।
रक्षा बंधन के लिए प्रतीक्षारत बहनों के
शोकयुक्त हृदयों से पूछो...युद्ध क्या होता है ?
वे ही बता पाएंगी।
बेसहारा हृदयों को गले लगाकर न पुचकारने वाली
छोटी-छोटी, अभागिन, कलियों-सी लड़कियों से पूछो...
युद्ध क्या होता है ? ... वे ही बताएंगी।
अंधेरों में डूब गए चमचमाते शहरों में
झड़े हुए फूलों की सुगंध खोने वाली ऋतुओं से पूछो
युद्ध क्या होता है ?/तभी पता चलेगी सच्चाई
हजारों वसंत झड़ गए/अब तो रुके यह सब !
कोशों से हटे 'हत्या' शब्द
भावी पीढ़ी प्रश्न करना ही छोड़ दे ... युद्ध क्या होता है ?
कोशों से ऐसे हट जाए 'हत्या' शब्द।

सीता की सोच

तारिणीचरण दास 'चिदानंद'

हाय राम ...... कौन है ... कौन है, जो मेरा करे उद्धार
घिरी हुई हूं चारों ओर से राक्षस-राक्षसियों से
विकृत मनुष्य की आकृतियां हैं इनकी
आंखें, मुंह सब कदाकार/करते हैं प्रवेश आर्यावर्त्त में नित

घने जंगलों से नीरव निशीथ में विस्फोटक मारणास्त्र ले।
बिखरकर हड्डियों और रक्त से कर सिक्त
करते अपवित्र यज्ञ-पीठों को/और दिन में
करते प्रवेश...साधु-संतों के वेश में।
हो ... होशियार ... होशियार ... सावधान। ×××
पर क्या ... हर राक्षस आता है श्रीलंका पुरी से
या छिपा हुआ है भारत के गांवों, और गिरिवन की गुफाओं में ?
वे हैं तालीम प्राप्त ज़ालिम/राक्षस-मनुष्य या मनुष्य-राक्षस
(गहरे अंधरे में जो करते घुसपैठ) ... ×××
कहती आई हूं मैं बार-बार ....
अयोध्या है अ-योध्या/चाहती नहीं है समर
पर छिड़ने से जंग नहीं करती कभी पृष्ठ भंग।
(लंका चाहती है राम की मार)
कपिवर, रहो सावधान/ये दानव हैं भौतिक शक्ति संपन्न
पास में उनके हैं कई यंत्र नाग पाश
चाहते भारत को करना खंडित ... विध्वस्त
वानर सेनाओ, हो जाग्रत/होने नए दिश को पराजित ...।
भारत वर्ष है संपूर्ण न है वह भिन्न
उत्तर-दक्षिण या पूरब-पश्चिम,
गंगा से, गोदावरी, हिमालय से कन्या कुमारी में हैं
जितनी नदियाँ और पर्वत–हों एकत्र
करने को प्रतिहत इस विदेशी शक्ति को।
उत्तिष्ठत ... जाग्रत ! समय नहीं है होने का सुप्त
समूह शक्ति के बल से खोलो तुम नया मार्ग
संत्रासी पीड़ित धरा को बनाने को स्वर्ग ...।

'चेतना' काव्य के अंश

प्रत्यक्ष

तिलक तम्साल

अकड़ते हुए
कोने-कोने से आगे बढ़ते हुए
बादलों के लंबे-लंबे पांवों का
'उजाला' कब्जा करने की चाह रखना

– एक असफल प्रयास ही है।
मुंडाकर सिर के बाल सभी/श्रृंगार दहनकर
काशी, विश्वनाथ नहाकर लौटने वालों का
'परंपरा' कब्जा करने की चाह रखना
– एक बड़ी विडंबना ही है।
छोटे-छोटों द्वारा बजाए गए बड़े-बड़े घंटों को सुनकर
घर-घर से बटोरकर
गगरी, कुकर, केतली और नलों का
'शांति' कब्जा करने की चाह रखना
–स्ववंश का दबाव ही है।
हल्के से जमीन पर गिराकर/गड्ढों को भरकर
विस्फोट, आगजनी और गोली प्रहार का
'सुगंध' कब्जा करने की चाह रखना
–बंदूक की आंख से आंसू गिरना ही है।
साथियो ! यात्रा के इस अंतराल में
बूढ़ा अतीत क्या
हमने पिता पुरखों तक को भी देखना छोड़ दिया।
मुड़कर पीछे एक बार, कहो तो
कंधे पर ज़िंदगी सजाकर/अब कहां तक जाएंगे ?

आतंकवाद और बंदूकें

दर्शन राही

आतंकवाद में/अपना कुछ नहीं होता
कानून, क़ायदा या कि संविधान
भले कुछ कहे। यथार्थ में तो वह बकवास लगता है,
कभी शाम तो कभी सबेरे/कभी रात तो कभी दोपहर
बंदूकें आती हैं और हमारा आंगन/खून का पोखर बन जाता है
बंदूक लाने वाले उठा ले जाते हैं हमारे प्रिय
वे लूट ले जाते हैं–जीवन भर का सहेजा हुआ प्रेम
सोना-चांदी तो कभी देखा नहीं हाथ लेकर
हमारे झोपड़ों में अधजली रोटियां
और कच्चे टमाटर की चटनियां हैं।

जिन्हें बंदूकें गटक लेती हैं/दहाड़ती हुई
और हममें से बहुत सारे लोग
ऐसी बंदूकों को दिन-रात सलाम करते हुए
एक दिन कूड़े-कर्कट के ढेर बन जाते हैं
बंदूकों को किसी से सरोकार नहीं/सिवाय इसके
कि अपने दाता या स्वामी के वे पेट भरें
और उनकी यौनेंद्रियों को खुश करें
चाहे इसके लिए मुल्क चीथड़े-चीथड़े हो जाए
और घर तबाहियों से पागल हो जाएं
उन्हें तो बस चाहिए ही चाहिए।

ग़ज़ल

दीपक बारडोलीकर

बाग तक मरु आन पसरेगा, अरे ओ कमबख़्त
तू न यों थूहर उगायेगा, अरे ओ कमबख़्त
घूंट भरता है लहू के तू अरे ओ कमबख़्त
देखकर यह, दैत्य नाचेगा, अरे ओ कमबख़्त
उज्ज्वलित मुख है धरम का, मत विकृत कर तू उसे
यों सियाही गाढ़ पोतेगा, अरे ओ कमबख़्त
स्पष्ट कर, तू कौन है, इन्सान या हैवान है
सत्य परिचय सिर्फ़ दे देगा, अरे ओ कमबख़्त
नष्ट गौरव हो गया क्या ? रिक्त भी तू हो गया
इस तरह तो भीख मांगेगा, अरे ओ कमबख़्त
हर तरफ शोले मचलते हैं यहां भड़के हुए
प्यार की क्या फ़स्ल काटेगा, अरे ओ कमबख़्त
मार्गदर्शन पा सके इन्सानियत शायद कभी
एक 'दीपक' मात्र बोलेगा, अरे ओ कमबख़्त

काबुलीवाला

देशमंगलम रामकृष्णन

काबुलीवाला ! कहां हो तुम ?
सात समुंदर पार करने को

अब तुम किस मासूम की नौका ?
आसमानों के उस पार जाने को इच्छुक
किस बच्चे का कोयल ?
बारिश में भीगे पंखों की तरह
धूप में सफेद वेल्लिला*-सा
ठंड में घास की नमी ओढ़कर
ऋतु वसंत में दोने भर फूल और अंगूर लेकर
अब तुम किस भूखंड में हो ?
सब कहीं मिठास बांटकर तुम चले थे
आज धनी हो या गरीब ?
काबुलीवाला ! यह देश तुम्हारे योग्य नहीं रहा।
गुड़ियों के सपनों में/लट्टू के विस्मय में मगन
इन मासूमों को शैतानों की मांद से बचाकर रखोगे कहां ?
जहां भी जाओ, सीमाएं !
जो कुछ भी देखो, राख में छिपे अंगारे।
लौटकर आओगे तो क्या पहचानोगे
अधजली इस धरा को ?
''लो, यही मेरी जन्मभूमि/यहां था मेरा घर,
यहीं खड़ा था वह अश्वत्थ
जिसके तले बैठकर बिटिया
अरुंधती नक्षत्र के वास्ते माला गूंथते
मेरी राह देखा करती थी''—यादें ऐसी
हज़ारों होंगी तुम्हारी,
किंतु आज यहां वे भी लुप्तवंश हो चली हैं।
काबुलीवाला ! यह तेरा नाम पूछता है मुझसे
ऐसा क्या हुआ जिससे हम यों निराश हुए ?
सीमाएं पोंछते ये तुम्हारे पैर पूछते हैं मुझसे
ऐसा क्या हुआ
जिससे हम यों जान-पहचान खो बैठे ?

(अफगानिस्तान के संदर्भ में लिखी गई कविता)

**एक सफेद पत्ता*

शांति

नागभैरव

किसी से न पूछो मेरा पता/कहीं न ढूंढ़ो मुझे
घर बदल दिया मैंने और गली भी,
गांव का सरहद भी पार किया,
तालाब, पहाड़ और नदी भी
किसी दिगंत शून्य में उड़-उड़कर गायब हो रही हूं मैं।
घर-घर पूछने पर, हर दरवाजा खटखटाने पर
गांव में, शहर में पूछने पर भी
मेरा अता-पता तुम्हें नहीं मिलेगा।
मेरा महत्व तुम कभी न भूलोगे।
यदि तुम्हारे भीतर 'इन्सान' जाग जाए
और तुम खुद जब 'अपने' को जान जाओगे
तब मैं जरूर आऊंगी।
तुम्हारे दिल में, घर में, गांव में
और वहीं घर बसाकर रह जाऊंगी।

फिर एक बार

नारायण सुमंत

पराजय के नाम पर भी
नहीं तुम्हारा कोई इतिहास
उसके लिए भी करनी पड़ती है लड़ाई।
पहले कभी तो पढ़ा था 'बखर'* में
हंसिया और गंड़ासे ही बने थे तलवार।
लेकिन जीतते रहे राजा/तुम तो हमेशा बने सैनिक।
दुर्ग पर मनाए हर्षोल्लास/विजयी तोपों की आवाज से
लेकिन तुम्हारा गिरवीनामा/साबूत ही रहा साहूकार के पास
सत्तांतरण में भी।
और अब लगता है–
स्वयं को ही जोतना पड़ेगा/फिर एक बार।

ऐतिहासिक अभिलेख

अली की आंखों का खारा पानी

प्रताप सिंह

अमरीकी चमगादड़ों की मशीनी चांदमारी में बच गए
बारह साल के अली ... इस्माइल अब्बास अली ! तुम्हें सलाम !
जानता हूं तुम्हारी आंखों में-अरबी...कुर्द...तुर्की...असीरियाई...
सब भाषाओं का खारा पानी जमा है !
जानता हूं कट गईं तुम्हारी बांहें
कोई लौटा नहीं सकता–बुश भी नहीं !/सद्दाम भी नहीं
बहशत और दहशत में जीने वालों को कुछ भी
खो देने का फकत मलाल होता है
पर तुम्हारा अरबी खून खौल रहा है इंतकाम के लिए !
अली ! तुम जानते हो-बांहों को
जिस्म से अलग कर दिए जाने से भी ज्यादा
बड़ी तकलीफ क्या है
अली ! तुम बोलते क्यों नहीं आंखों से
तुमने-तिकरित, दजला और फरात को मिटते देखा है
पर अब तुम्हें ही बचाना है पूरा भरा-पूरा मेसोपोटामिया
जिसके परकोटे में-शर्मशार होकर जी रहे हैं
मोसूल/बसरा/सुलहमनियाह!
सबके सीने में-मौत के नबी टहल रहे हैं
पर तुम्हारे कलेजे की हूक में-हत्यारे का एक ही नाम है
गोरा-चिट्टा और सद्दाम जैसा ही कायर और दरिंदा भी।
एक नस्लखोर, बेरहम/पर कसाईपने में थोड़ा रहमदिल!!
अली ! तुम्हारे दोनों हाथ चुरा ले गया है अमरीका
नसीरिया के मिसाइली विस्फोट के बाद
माई-बाप की राख-कटे हुए हाथों को
मुट्ठी में दबाए तुम कहां जा रहे हो
अपने वतन के फौलादी इरादों का वजूद तलाश करने।
अली ! तुम्हारी तेजाबी आंखों में धधक रहा है–
इराक का फास्फेट और सल्फर
इराक का तेल और बारूदी दलदल।

कौन बचाएगा उसे–?
तुम्हारे हमवतनों की चेतना के दर्रे में
बगदाद
सद्दाम के बाद/दूसरे सद्दाम के कब्जे में है
या उसे छुड़ा लिया गया है–
ऐसे गरजमंद से जो बाहर से आया है
और रहमदिल का मालिक है
क्योंकि वो बारूद और रोटी एक साथ बरसाता है!
अली ! उसके मगरमच्छी आंसुओं के फरेब में मत आना
जो/होठों पर आने से पहले ही
सी दी गई हजार-हजार चीखों का गरजमंद है।
अली ! तुम्हारे बिछौने के नीचे बुश तलाशता है–जैविक हथियार
अली ! तुम्हारे कुरते की जेब से उसने चुरा लिए हैं–चिलगोजे,
खजूर और बालें, गेहूं ओर कपास के उम्दा किस्म के बीज।
अली ! उसे चाहिए अरबे-जमजम के नीचे छिपे तमाम तोहफे !
अली उसके बमवर्षक भूखे हैं–
एक मुल्क को कब्र में बदलने के बाद भी।
अली ! तुम्हीं उसे ललकार सकते हो
बिना बंद-मुट्ठियों और बाजुओं के ही !
जार्डन, सीरिया और तुर्की तुम्हारे कंधे हैं
इन्हें बचाए रखना और हमवतनों के लिए भी।
एक बमवर्षक सीने से होकर गुजरता है–
तो तुम पुकारते हो–
बुजदिलऽऽ...बुजदिलऽऽ
तुम्हारी यह दिलेरी हजार बांहों और
लौह मुष्ठियों जितनी ही ताकत रखती है–अली !
तुम्हारी दर्दीली तसवीरें दीनार से ज्यादा
महंगी बिकती हैं यूरोप में
इस क्रूर मजाक को समझो और कहो
तुम्हें किसी की इमदाद/किसी की दादागिरी मंजूर नहीं !

(सामयिक वार्ता *से साभार***)**

रुधिराक्त जनतंत्र

प्रेमानंद पंडा

जनतंत्र का रक्षा-कवच संसद भवन
खूनियों के निर्मम हाथों से रक्त रंजित
स्तब्ध, अचंभित समग्र भारत।
अटक गया है यमुना का स्रोत/गंगा बदल रही है निज राह
गोदावरी, महानदी में गिर रहे हैं/नाविक के हाथों बारह हाथ डाँड।
किसान सिर उठाकर देख रहा है आसमान को
उसके हाथों में आधा कटा शस्य
पत्नी ने पकड़ा है तेज धारवाला हंसिया
उधर गृहिणी के हाथों में सब्जी काटनेवाली तीक्ष्ण कटार
वीर उड़िया पाइकों ने संजो रखी हैं ढाल और तलवार
सिख जवान उठा रहा है अपना खड्ग
पहाड़ी सरदार संजो रहा है धनुष और तीर
शस्त्रों से सजे पहरुए जवान दिखते हैं सदा जागरूक
पापी उग्रवादी ! अब हो जाओ संयत और सावधान !
चाहता नहीं भारत शत्रुता/चाहता है दोस्ती
चाहता नहीं कभी वह रण/चाहता है शांति
तभी तो बढ़ाए उसने दोस्ती के हाथ
अविवेकी और अज्ञानी/कभी परख पाएगा दोस्ती का अमृत ?
अब लुप्त हो चुका है भारतीयों का असीम धैर्य
भारत की संतानें सदा प्रबुद्ध/सदा उद्यत
भारत माता की रक्षा के लिए
राष्ट्रीय ध्वज की इज्जत के लिए जीवन हमारा समर्पित।

संघर्ष

फ. मुं. शिंदे

दुःख और पीड़ा की खूब चर्चा हुई
धूपबत्ती की तरह जलकर राख हुई।
सभा में ज्यों-ज्यों रोए, उनका दुःख था अपना
संघर्ष के सपने–कुर्सी में ही उलझे।
सुख-दुःख से बेखबर वे भी हिल गए थोड़े

फिर भी साम्राज्य के दौड़ गए घोड़े।
क्यों करता हूं मैं आक्रोश/क्यों यह कंठ सूखा ?
सभा में गूंगों का बेशुमार शोर।
मेरे भाइयो ! है अंतिम प्रार्थना
सुख के लिए मत करो दुःख का व्यापार !

प्रवास के दौरान

बलबीर माधोपुरी

उत्तर से दक्खिन में उड़ आया हूं
किसी प्रवासी परिंदे की तरह।
जब भी कविता की पुस्तक उठाता हूं
अपना ध्यान बाँटने के लिए
सतरें बदल जाती हैं
मेरी मासूम बेटियों के चेहरों में
आंखों के सामने आ खड़ा होता है
बारह बाई दस का/मेरा किराये का मकान
जिसके अंदर फुदक-फुदक कर उठती-बैठती हैं
मेरे चंबे की चिड़ियां/कभी गरमाइश का आनंद उठाती
दीखती हैं/अपनी मां के परों के नीचे
छोटे-छोटे चूजों की तरह
और विशाल समुद्र के तट पर खड़ा
में सिमटकर रह जाता हूं
किराये का डिब्बेनुमा मकान
और जब अचानक कोई पकड़ लेता है मछली
मन के अंदर तेज-तेज उठती हैं लहरें
और मैं/उस डिब्बेनुमा मकान के अंदर
उपस्थित रहना चाहता हूं
क्या मालूम इस पागल काल की दिशाहीन हवाओं का
रुख किधर को हो जाए
और मैं उस समय घर लौटूं जब मैं उसके सामने
दीवार बनकर खड़ा होने में/असमर्थ होऊं।

बम

बालचंद्रन चुल्लिक्काड

डर लग रहा है मुझे अकेले चलने में
कोई चार-पांच अकस्मात्
टूट पड़ें मुझ पर और छलनी कर दें तो...
गला घोंट दें या पसली में छुरा भोंक दें तो...
मैं किसी का कातिल नहीं/किसी को सदमा नहीं पहुंचाया
किसी पार्टी का कुली नहीं रहा
फिर भी नवयुग के सृजनकार
बस से नीचे घसीटकर कलेजे को चीर दें तो...
हे ईश्वर ! इस दुनिया में गलती से
मारे जाने वालों का कोई सहारा नहीं होता।
पार्टी से डरकर कोई गवाही भी नहीं देगा।
कवि, किसी पार्टी का सदस्य बनने के काबिल हो जाए
तो कितना खुशनसीब होगा !
किसी अहं जाति का समर्थन पाने में सक्षम हो जाए
तो वह कितना भाग्यवान होगा !
कोई धर्म पीछे है तो डर की कोई गुंजाइश ही नहीं,
सारा जन्म सुरक्षित हो जाएगा।
किसी नए सिद्धांत का दलाल बने
तो आजीवन खुशहाली होगी।
जाली सिक्के-सा दो कौड़ी का कवि बनकर जीना
दूभर ही है इसीलिए थैली में बम के साथ, वाकई
देश भारत-सा जी रहा हूं मैं।
पता है, किसी मायूस महूरत में
बम का विस्फोट छलनी कर देगा मुझे
पर मारे जाने से आत्महत्या ही बेहतर है।

खून झर रहा है

ब्रजनाथ रथ

खून झर रहा है देखो नयनों से, खून झर रहा है हृदय से।
खून झर रहा है तेज गति से, अभिशप्त इस समय से।।

खून झर रहा है नगर प्रांतों में, शांत कमनीय पल्ली में।
खून झर रहा है झेलम के किनारे, झर रहा है खून दिल्ली में।।
कश्मीरी चारू उपत्यका में, असम के घने जंगलों में।
अविरत खून झर रहा है, कहो किस लोक-कल्याण में।।
झरा था खून वर्षों पूर्व, फ्रांस के राष्ट्र विप्लव में।
रूस के वहां कोटि जनता की, महाक्रांति के गौरव में।।
महाभारत के कुरुक्षेत्र में, दिया धरम का संकेत।
खून झरा है हर युग में, गाकर सत्य का संदेश।।
आज जो खून झर रहा है किसलिए
किस स्वार्थ में
कहो किस गूढ़ अर्थ में ?
झर-झर खून झर रहा है, राजमार्ग गली-बस्तियों में।
खून के प्यासे भक्त हैं जितने, बजाते वंशी नर अस्थि में ?
रुधिर भक्त कौनसी पांचाली, बांधेगी अब अपनी वेणी।
लाखों निरीह याज्ञसेनी के आंसू से भीगी धरणी।।
जिस खून से बंजर धरती, बनती है हरी-भरी।
जिस खून से बनती शिवा, शक्ति-शांति-निर्झरी।।
जिस खून से जीवन-सूर्य, दिखाता है रोज दीप्ति।
व्यर्थ उसे क्यों झरा रहे हो, मृत्यु का चिर-प्रत्याशी ?
लाखों दृगों से झरता है आज, खून का दुर्वार प्रवाह।
लाखों जीवन तुम्हारे हेतु, दुर्भर आज फिर दुर्वह।।
ध्वंस के दूत सृष्टि के लिए, क्या दोगे तुम संदेश।
हाथों में तुम्हारे कलंक की मसि, दूर क्या करोगे क्लेश !
काट डालो हे गुप्त घातक, अंधी आंखों का बंधन।
कान खड़े सुनो, पल्ली-नगरों में, कोटि निरीहों का क्रंदन।
दग्ध हृदय में ना जलाओ और, प्रतिहिंसा का ईंधन।।
झरा है खून, झरता है खून
खून के गूढ़ अर्थ को।
समझने की करो कोशिश,
भूलकर स्वार्थ अनुभूत चिर सत्य को।
व्यर्थ न करो यौवनोद्दीप्त, जीवन-परमार्थ को।।

नब्बे साल के एक बूढ़े का एक सवाल

भविलाल लामिछाने

तुम बंदूक लेकर आए-मैंने अपनी संतान दी
तुम भाला लेकर आए-मैंने अपना भ्रूण दिया
तुम आग लेकर आए-मैंने अपना आशियाना दिया
झोपड़ी दी/उपवन दिया/मधुवन दिया।
तुम धूल उड़ाते आए-मैंने अपनी जवानी दी
अतीत दिया/वर्तमान दिया
और कुछ भी नहीं रखा कल की ख़ातिर।
तुम तोप लेकर आए-मैंने इतिहास दिया।
अब/मेरी नई पीढ़ी के बच्चों, पोतों, पड़पोतों की लाशों में
खड़ा हूं मैं नब्बे साल का एक बूढ़ा आदमी।
तुम फिर आए-मैं तुम्हें फिर भी दूंगा
अपने सीने में छुपाकर रखा हुआ
थोड़ा-सा प्रेम/थोड़ा-सा विश्वास।
हे आततायी बंधु ! चलाओ अपनी बंदूक और
गोली जब इस बूढ़े के सीने को छलनी कर
पीठ से पार होगी और मैं धरती पर लुढ़क जाऊंगा,
क्या तुम बता सकोगे तुम्हारी बंदूक
अब किस-किस के सीने पर चलेगी ?

कविता

मनमोहन सिंह

कहा जाता है मुझे
तुम्हारी कविता का रंग काला
नक्श चपटे/अनुप्राय फटा-पुराना
यमक बोसीदा/स्वर बेसुरा/लय टूटी हुई।
कविता रचनी है तो लिखो जैसी होती है...कविता
दुःख पहले आ जाते हैं सुख के
दर्द बोलता है चैन के पहले
कैसे कवि हो तुम/कौन पढ़ता है ऐसी कविता ?
क्या परिचय दूं अपना

नाम, गांव, बाप, दादा, जात, गोत्र
नहीं चाहते लोग यह सभी कुछ जानना
फूलों के पौधे/चिड़िया का चेहरा
संध्या के खामोश सितारे/बलौरी हवा/मुलायम धूप
बिना आँख झपके देखते रहते हैं मेरा चेहरा
जैसे मैं किसी और ही दुनिया के
किसी डरावने सपने की रात की कहानी का पात्र हूं
जिसे भूल चुका है इतिहास...कब से
अब बता/ऐसी कविता ना लिखूं...तो क्या करूं...?

1947

महेश नेणवाणी

उस दिन बिजली गिरी थी
जिसके उजाले में/उसके हाथ का छुरा चमका
और वह चमक उसके भयानक मुख पर पड़ी।
वह काला, नंगा और आदमखोर इतिहास था
उसने मुझे बालों से पकड़ पूछा
"हिंदू या मुसलमान ?"
उसने मुझे/परिवार के सभी सदस्यों के साथ
घर से निकाल बाहर फेंक दिया
और द्वार बंद कर दिया
अब मैं कुंडियां खड़काकर चिल्लाता रहता हूं
"इतिहास, सुन ! मैं सिंध का हूं/मैं सिंधी हूं
और सिंधी/हिंदू हो सकता है/और मुसलमान भी।"

सांस नहीं ले सकता मेरा शब्द

योगेश जोषी

जो टूटती हैं –
वे तो सिर्फ दीवारें ही होती हैं
मंदिर या मस्जिद कभी टूट नहीं सकते।
वे लोग जो दुकानों को तोड़-फोड़-लूटकर
जला देते हैं बाद में/नहीं जानते

कि वे दुकानें केवल दुकानें नहीं हैं
वे तो हैं इन्सान के भूखे पेट।
वे लोग/जो घर जला देते हैं सपनों के साथ
वह घर न तो हिंदुओं का है/न ही मुस्लिमों का
वह तो है इन्सानियत का घर।
वे लोग/जिसे जिंदा जला देते हैं
वह न तो हिंदू हैं न ही मुसलमान,
वह तो है–साक्षात मानवता।
राक्षस बन चुकी अग्नि को कह दें
कि सूक्ष्म रूप लेकर वह पहुंचे घर-घर
बन जाए चूल्हे की अग्नि
और बन जाए उजाले में रोटी सेंकते दो हाथ।
लेकिन चूल्हे को जलाने की कामना करनेवाली/अग्नि के पेट में
ये लोग उंड़ेल देते हैं मिट्टी का तेल और पेट्रोल।
फिर अनेक दुकानें भड़-भड़ भड़-भड़...
फिर अनेक घर और झुग्गी-झोपड़ियां भड़-भड़ भड़-भड़...
इन्सान और इन्सानियत भड़-भड़ भड़-भड़...
स्याह काले धुएं से दम घुटता है सारे आकाश का।
सांस ही नहीं ले सकें–ईश्वर और अल्लाह...
आगे क्या लिखूं ?
सांस नहीं ले सकता मेरा शब्द भी !

प्रलाप
(अंश)
रमेश पारेख

प्यारे डॉक्टर साहब !
मैं तुम्हारा डिप्रेशनग्रस्त पेशेंट चतरभज ! ×××
कर्फ्यु है, सन्नाटा है चारों तरफ
फिर भी बाहर निकला हूं ××× कानून ने पकड़ा।
मुझे कानून को कहना पड़ा ××× मुझे नहीं, जड़ को पकड़ ...
सगर्भा, नग्न, निस्सहाय ××× मेरी भाषा को
ब्रह्म के सामने ढुमकना था।

लेकिन अब ब्रह्म जल रहा है मेरी भाषा में भड़भड़ाकर
राजकोट में (गोधरा, अहमदाबाद, बड़ौदा में भी)।
सन्नाटे में, कर्फ्यू में। ×××
क्या कहने निकली थी/जलकर दुहरी हुई रिक्शे जैसी मेरा भाषा ?
किसे मालूम, लेकिन जल रही है मेरी भाषा
मेरी भाषा में भड़भड़ाकर
जल रही है मेरे आशास्पद कवि की नौजवान भाषा
मेरी भाषा में भड़भड़ाकर जल रही है–
जल रहे हैं मेरी छाती के चिंगार जैसे अखबारों के
प्रथम पृष्ठ भड़भड़ाकर
इस क्षण, कबा गांधी की ड्योढ़ी के सामने,
कर्फ्यू के सन्नाटे में।
अब तो...अब तो, देखो न, भुरता हो गई है मेरी भाषा
अगर मैं देखूं इस क्षण
तो देखता हूं मुर्दा गिरी पड़ी भाषा की बची-खुची ये आंखें।
एक आंख में है एक शब्द : बुझाओ
दूसरी आंख में है एक शब्द : मुझे ...
मेरे कान...डॉक्टर साहब, मेरे कान सुन रहे हैं
चीखें मेरी भाषा की आंखों की/पर मैं चतरभज
खड़ा हूं कबा गांधी की ड्योढ़ी के पास, निस्सहाय
और मुझे पकड़कर खड़ा है कानून
ऐसे वज्र जैसा और वैसे नपुंसक !
मेरी भाषा की आंखें मुझे पूछ रही हैं : हे चतरभज संत,
कब आएगा मेरे यह भड़भड़ जलने का अंत ?

कर्फ्यू

राजेंद्र भंडारी

झुंड बनाकर मत तैरो मछलियो !
किनारे पर ही रहो।
मछुआरा आ रहा है/नदी में कर्फ्यू है।
मत उगो बीजो !
जमीन के नीचे ही रहो/मिट्टी में कर्फ्यू है।

कुछ नहीं उगना चाहिए मिट्टी में
बाड़ी की शांति में धक्का लग सकता है।
पिछले आधिकारिक सूत्रों के अनुसार
सभी आवाज हल्ले हैं/सारे मौन शांति हैं।
गीत न गाओ चरवाहे भैया !/हवा में कर्फ्यू है।
बंदूक से नमस्ते करके/चौक-चौक पर
शांति की अपील की गई है/शहर में कर्फ्यू है।
स्कूल नहीं जाना है, बच्चे खुश हैं।
कवि का घर तोड़कर नेताओं ने शब्द चुराया।
कितने ही शब्द भूमिगत हैं जैसे--
स्वतंत्रता, मुक्ति, हार्दिकता।
शहर के पहलवान, गुंडे, ज्योतिषी, लड़की, भिखारी, नेता,
दुकानदार, किरानी, पुजारी सभी घर के भीतर हैं।
घर के भीतर महिलाएं
स्वेटर बुनकर उधेड़ रही हैं/उधेड़कर बुन रही हैं।
खिड़की-दरवाजों के कोने-कोने से बच्चे झांक रहे हैं।
'सूट एट साइट'/'सूट एट साइट'
विचारो ! छुप जाओ अवचेतन के भीतर
चेतना में कर्फ्यू है।
बाहर घूमने-फिरने की मनाही है।
स्वर ऊंचा करके बोलने की मनाही है।
असामाजिक हो जाएगा।
चिल्लाना नहीं है/शांति में खलल पड़ सकती है।
खाकी वर्दी की ओर ताकने की मनाही है।
शांति पर आंच आ सकती है।
'सूट एट साइट'/'सूट एट साइट'
बच्चों को रोने नहीं देना है।/कुत्तों को भौंकने नहीं देना है।
अमन-चैन नष्ट हो सकता है।
शहर में कर्फ्यू है-शांति के लिए।
मौन धारण में हैं बुद्ध/शांति के लिए।
टियर गैस से धुंधलाई हैं आंखें।

फायर बिग्रेड की धार से नहाकर
तनकर सो गई है सड़क।
सड़क को बोझिल नींद लगी है।
सपने में देख रही है सड़क/एक जमात की चहल-पहल।
बूटों की ग्रेप-ग्रेप/ट्रैफिक जाम/हो हल्ला/हॉर्न।
चक्कों का लुढ़कना/घर्घर !
महकुमा प्रशासक के आदेश, निर्देश पत्र
छितरे पड़े हैं जमीन पर।/'सूट एट साइट'
कांच के घर के भीतर प्रदर्शन में है शांति।
अखबार में शांति का फोटो है।
शहर में कर्फ्यू है।

भय का साया

रामकुमार बेहार

बस्तर के मेरे आदिवासी भाइयो !
हाय ! मुखिया की मौत पर भी मौन ?
परंपराएं तोड़ती यह कैसी विडंबना है।
शोक की छाया नहीं पर भय का साया है
भारतीय परंपरा देती है सीख–
जन्म के साथ ही मृत्यु की घड़ी, स्थल, प्रकार
जब हो गया है तय फिर क्यों मृत्यु का भय ?
कायरता और मृत्यु में श्रेयस्कर है मरण ही
मुखिया अपने लिए नहीं/तुम्हारे लिए मरा है
और आतंकवादी नहीं मित्रता का आदी
वह शायद ही बख्शे तुम्हें भी ... शायद ही !

बंबई का बम विस्फोट

रेणुका शिरहट्टी

बंबई के बम विस्फोट में–
कौन-कौन मारा गया?
कौन-कौन फेंका गया दूर-दूर तक !

कौन-कौन जल गया कहां-कहां तक !
किसकी टांग/किसका मुंह/किसका हाथ/किसका सिर
कहां-कहां जा गिरे या जलकर खाक हुए
खून और जले हुए अवयवों के ढेर
इधर-उधर बिखरे हुए तितर-बितर !
फैले हुए वे टूटे अंग, किस-किस के थे ?
पहचाने भी नहीं गए !
शायद उस आदमी के जो जा रहा था नौकरी पर
उस बच्चे के जो जा रहा था स्कूल
उन लड़कियों के जो देखने जा रही थीं फिल्म
उस औरत के जो स्कूल से लेने जा रही थी बच्चे को
उस मां के जो मिलने गई थी, बेटी को
उस मजूदर के जो जा रहा था काम पर
उस नन्हें दूध-मुंहे बच्चे के
जो पंखे पर जा गिरा था उड़कर,
क्या मिला उन्हें
जिन्होंने—हत्या कर दी थी, इन लोगों की ?
क्या उस अमानुष कृत्य के लिए पाए पैसों से
वे सुख, शांति, चैन पा सके ?
क्या पैसा इंसानियत से बढ़कर है ?
क्या वे आतंक फैलाकर—
अपने मकसद में कामयाब रहे ?

अठारहवें दिन के कुछ एक शिविर

ललित त्रिवेदी

खंजर

नागरिक ने पूछा—भाई ! कहीं मिलेगा ?
पानी ! सुनते हो, समझे कि नहीं/पानी मिलेगा पानी ?
रखा पड़ा था/नागरिक की जेब में पानी।/भोंक दिया।

कर्फ्यू

घर से निकला/और सामने मिल गया मुझे
पर्याय/अपनी लाश का।

रिफ़्यूजी कैंप

किसके लहू का पानी बरसा था/आषाढ़ी बादल बनकर ?
किसके खेत में/किसका गेहूं बनकर ?
एकाकार है रोटी की गंध/और आकाश खूंखार रातों का।

प्लेग्राउंड (यानी गली)

स्टंप के पास सीधा पड़ा बैट
बुश्शर्ट पर फुटबाल से भी बड़ा/लाल धब्बा।

आखिर आप चाहते क्या हैं ?

विमी सदारंगाणी

मुझे तो समझ में ही नहीं आता
आख़िर आप चाहते क्या हैं ?
गुजरात में दूसरा नया गुजरात
असम में दूसरा नया असम
पंजाब में दूसरा नया पंजाब
घर में दूसरा, नया घर,
मुल्क में दूसरा, नया मुल्क
दुनिया में दूसरी, नई दुनिया
हर टुकड़े में से दूसरा, नया टुकड़ा
और उस टुकड़े में से दूसरा, नया टुकड़ा।
आप ही कहते हैं–
जन्म देने वाली मां की तरह
पालने वाली मां का भी
बालक पर अधिकार होता है
फिर इस भूमि को नज़रअंदाज करके
छोड़कर आई भूमि के पीछे क्यों पड़े हैं ?
क्या प्यार केवल सम्मुख रहने पर ही रहता है ?
वह तो शाश्वत है–किसी के होने, न होने से बेहद दूर
मां, बच्चे से दूर रहने पर भी
उसे देती रहती है आशीर्वाद
क्या बच्चे भी/मां से दूर होने पर भी

ऐसा नहीं कर सकते ?
प्रार्थना करें कि मां जहां भी हो, खुश हो।

वातावरण जनपद का

वेणु गोपाल कृष्ण

होता है कितना
चितचोर वातावरण जनपद का !
शुद्ध जल/शुद्ध हवा/शुद्ध मूल/शुद्ध मंत्र।
चाहते हैं सारे के सारे
वातावरण जनपद का रहे ऐसा।
शांति इतनी-सी ही
पर्याय है न आंतरिक शांति का !
एक-एक को चलना होगा ऐ दोस्त !
इसी जनपद की ओर ...
महसूस करना किंचित, कितना चितचोर वातावरण है
शांत जनपद का !

वे इन्सानी मेहताबें

वैरमुत्तु

आज रोशनी का त्यौहार है
आपके लिए साल के झाड़ पर छाई बहार है
आग को फूलों-सा खिलाकर रोमांचित हो तुम
आकाश को कंपाओगे अब आतिशबाजी से
सच ! गलियों से आसमान तक
उमड़ेगी बाढ़ रोशनी की
मगर यह रोशनी/रो रही है मेरे आगे
कराती हुई परिचय अंधेरे का
इस दीपावली के ऊपर/बैठा है आसन जमाए दर्द एक
ताज पर छाए हुए गहरे शोक की मानिंद
इस आतिशी को जिंदगी देने वाले
सिवकासी के हाथों को भुला नहीं पाता हूं

दिवाली की नई पोशाक जुटाने गए थे जो
मिला क्या उनको–सिर्फ कफ़न ही तो।
वे इन्सानी मेहताबें/आग सुलगाने वाली
जुल्म की/बन गई हैं मिसालें
दिवाली को रोशन करने गए थे जो
प्यारे हो गए अंधेरे को/उसकी रैयत की तरह।
कैसे मनेगा त्यौहार जगमग करता/उस समाज में
जो बहाता है पसीना और जुटाता है आंसू
दीयों की रोशनी में/न जाने कितने और चिरागों को
गुल होते देखेंगे हम/दर्द को सहते रहेंगे हम !

ग़ज़ल

शिवनाथ

उदय होते हैं भय के साथ, ग़म के साथ ढलते हैं
कोई पूछे तो कह देते हैं, दिन अच्छे निकलते हैं
गिना जाता नहीं हमसे, पड़ा यह ढेर लाशों का
हमारे गाँव में यों भी तो अब, अनुमान चलते हैं
खड़े हैं मंदिरों-मस्जिद, सलामत कल्श गुंबद भी
मगर इन कारखानों में, कहां इन्सान ढलते हैं
फर्क मिटने को आया है, तास्सुब-आदमीयत का
जो दिल इक ख़ास जाति के, मनुज पर ही पिघलते हैं
ख़ुदाया रहम कर, परमात्मा अब तो करम फ़रमा
तुम्हारे नाम पर नफरत के, कारोबार चलते हैं

शहर की हवा

शीला बंडी धारगळकर

आजकल मेरे शहर में
हवा ज्यादा जोर से बहने लगी है।
साँसों में एक तीखा/काला-नीला धुआँ
नथुनों से रिसकर फेफड़ों में उतर रहा है।
दमकते चेहरों पर नसें उभर आई हैं/मुट्ठियां कसने लगी हैं
घर-घर में बंद दरवाजों के भीतर आग पक रही है।

कल रात अंधेरे/सारी धरा सोयी
एक काली परछाईं गली के नुक्कड़ तक पहुंची
तब हवा की सांस तक रुक-सी गई।
सहमी-सहमी हवा/अंदर-अंदर घुटती रही
एक-दूसरे की साँसों के कंपन दीवारें झेलती रहीं।
एक डर है भयानक आँखों में/तमस घेरे हुए हरेक को
कौन जाने कब हमारा आशियाना जला डाले कोई
या हम अपनी ही धरती से बेदखल कर दिए जाएं
या किसी जवान बेटे को बूढ़े पिता मुखाग्नि दें
या स्कूल गई किशोरी दिख पड़े सरसों के खेत में–
जल्लादों द्वारा नोची गई
या हमारे ही जवान बेटे/भाई हो जाएं आतंकवादी !
पानी और रोटी के एक कौर हेतु मोहताज हो जाएं हम सब !
एक सन्नाटा चीरता हुआ/एक खामोशी–
कलेजे में संगीनों की नोकें चुभी हुई हैं
फिर भी साँस चल रही है।
ये आजकल की हवा को क्या हो गया है ?
दुनिया कितनी पास है/फिर ये दिलों में
सुरंगें कैसे बन गईं, किसने बनाईं/दिलों के दायरे बढ़ रहे हैं।
जिस इतिहास से मेरी भुजाएं फड़क उठती थीं
भाटों के वीरगीत सुन लोग बाँहें सरसाते थे
उस इतिहास का प्रमाण मैं अब नहीं देती हूं।
हम सभी वर्तमान के अस्थिर
लंबे काले सर्प की सरसराती डरावनी छाया में जी रहे हैं।
हम जीएँ तो कौन से कल के लिए ?
हमारा कल तो वर्तमान की कोख में ही कल रात
कत्ल कर दफ़नाया गया है।
फिर भी मेरे शहर की हवा ने
दूसरे शहर की हवा के साथ हाथ नहीं मिलाया है।
मुझे उम्मीद है–
मेरे शहर की हवा कम-से-कम रोक तो सकेगी
अंधड़, तूफान और बवंडर को।

मेरे शहर की हवा/मेरे शहर का गरम खून
जिसका एक-एक कतरा मांगता है–एक खुशनुमा ज़िंदगी
एक खुशनुमा वर्तमान–एक खुशनुमा मौत।

पेड़

श्रीरंग

ये जो पेड़ हैं/तनकर खड़े पहाड़ों के कंधों पर
बादलों से हंसी-ठिठोली करते
हवाओं के संग लहालोट होते
काट दिए जाएंगे मशीनी आरियों से
हाथियों के सूंड़ से धकेल
लादकर ट्रकों-मालगाड़ियों में
पहुंचा दी जाएंगी मैदानों तक इनकी बोटियां...
आरा मशीनें बना देंगी पटरे बोटियों के
चीर दिए जाएंगे पेड़ सिर से पांव तक...
ये जो पेड़ हैं/पट जाएंगे छतों में
लग जाएंगे धन्नी बनकर
गाड़ी जाएंगी इनकी शाखाएं
सड़कों के किनारे विशिष्ट आगंतुकों की
सुरक्षा के लिए...
ये जो पेड़ हैं/उतार ली जाएंगी इनकी खालें
टहनियों से बनेगा कोयला/ईंधन बन खप जाएंगे पेड़...
ये जो पेड़ हैं/पहाड़ के हजारों हाथ
काट दिए जाएंगे, ऐसे ही
छटपटाएंगे जमीन पर घंटों बेबस पेड़........।

रात है अभी

श्रीविष्णु सिंह राय

अब कोई नहीं कहता–'यह सुहानी रात तुम्हारी और मेरी है !'
अब हर रात सुपारी लेने वाले हत्यारों की मुट्ठी में कैद है,
अब कोई नहीं कहता–'वह चांद तुम्हारा और मेरा है !'
अब शवासन में चला गया है चांद/और मृत्यु पहरा देती है निर्निमेष।
अभी हर रात मौत के पंजे में तड़पती है

अभी हर रात खून से सने शतरंज को मोहरे बनी हुई है
अभी हर रात शैतान के इशारे पर नाचती है
अभी हर रात के अंधेरे में फुंफकार कर कौन कहता है–
'आज की रात बदले की रात है'
ऐसे में कैसे कहूं मैं--यह रात तुम्हारी और मेरी है !
ऐसे में कैसे कहूं मैं--वह चांद तुम्हारा और मेरा है !

जागै अरु रोवै

संतोष बंसल

सन् 1510 ई. जीवन के अंतिम दिनों में,
मैं सुन रहा हूं/इस युग की अभिशप्त गूंज की अनुगूंज।
चारों तरफ सनसनाहट है
अपने को दबोच लिए जाने का भय,
लूट लिए जाने का डर/मार दिए जाने का खौफ
अपनी अस्मत बचाए रखने की फिक्र/पहचान मिटने की शंका,
पूरे समय पर गहरी छाया मंडरा रही है।
एक तरफ/पुर्तगालियों के रिपुदमन द्वीप पर कब्जे के साथ
व्यापार अधिकार में बदल गया है
वास्को-डि-गामा की भारत खोज
तीसरी दुनिया का भी कब्जा बढ़ाने लगी है।
मैं देख रहा हूं/सियासतों के गलियारों में सत्ता का षड्यंत्र
लोदी सरदारों को हटाकर काबुल से
तैमूर लंग के नाती बाबर को बुलावा भेजना।
कहावत है न ! घर का भेदी लंका ढहावै ?
पंजाब की सरहद पर गूंजती तोपों की आवाज,
बारूद की गंध/अब दिल्ली तक पहुंचने वाली है।
एक बार फिर इन धर्मों को रौंदे जाने का सिलसिला
क्या कभी थमेगा ?
सन् 1025 ई. में गजनी के गुजरात में
सोमनाथ मंदिर के लूटने की शुरुआत
क्या कभी इस क्रम का अंत होगा ?
क्रिया में प्रतिक्रिया–राम सेवक, कार सेवक

'हिंदू' के विशाल प्रांगण से निकल
हिंदुत्व की संकरी गलियों में लौट रहे हैं।
वे सहेजना चाहते हैं फिर से
राम भूमि अयोध्या को/कृष्ण जन्मस्थली मथुरा को
और मुक्ति के, मोक्ष के बोलों में गूंजती काशी को।
दूसरी तरफ इस्लाम की अपनी मनमानी/जबरदस्ती धर्मांतरण
मंदिरों के टूटे अवशेषों पर/मस्जिद बनाने की हठ/
अफगान से लेकर नालंदा तक
बुद्ध के बुत और स्तूपों को तोड़ देने की जिद
उन्हें गर्त में ढकेल रही है।
आने वाले युगों तक यह धरती जहर उगलेगी,
कहर ढहाएगी/खून बहाएगी।
हिंदू और मुसलमान...'अरे ! इन दोउन राह न पाई'
मैं दोनों को समझा-समझाकर थक गया।
जब कभी इतिहास के गड़े मुर्दे उखड़ेंगे,
हिंदुत्व के नाम पर हिंदुस्तान में
मस्जिदों की गुंबदें ढहाई जाएंगी।
धर्म के नाम पर घर बंटेंगे, देश बंटेगा।
इन्सानियत और मानवीयत, यूं ही कुचली जाएंगी।
फिर होगा शुरू विनाश का युग
और होगा चारों तरफ एक आतंक
ठीक ही किसी ने कहा है–इतिहास अपने को दोहराता है
अब भी मैं जाग तो रहा हूं/किंतु रो नहीं पा रहा !

तोहफे

संतोष सिंह 'धीर'

नवजात शिशु
जैसे कोई जगत में निरा नूर उदय हुआ
धरती उसकी माता, आकाश उसका पिता
सूरज, चांद, सितारे बहन-भाई
कमल फूल-सा पवित्र/अनछुआ/चन्न की वह चांदनी
तारों की लौ।

हमने उसे–प्यार से 'जी आओ' कहा
फिर उसे प्यार की निशानी समझ तोहफे दिए
एक उसे नस्ल दी/एक उसे रंग दिया/एक उसे देश दिया
छोटी-सी उसकी जान थी, फूल-सी कोमल
हमने उसे लाद दिया तोहफ़ों के भार से।
अब वह फूल/अब वह चांद/अब वह सूरज क्या था ?
यूरोपियन, एशियन, आर्य, द्रविड़
रूसी, चीनी, भारतीय,
हिंदू, सिख, मुसलमान
अब वह बहुत कुछ था मगर मनुष्य नहीं था।

मेरी मां

सनत तांती

हर कवि की मां-सी है मेरी मां।
मेरी मां साहित्य ओर शिल्पकला के बारे में
कविता या स्थापत्यकला के बारे में/कुछ नहीं जानती।
चलचित्र या नाटक का संवाद सुनकर भी
मेरी मां के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं होता।
मेरी मां आर्ट गैलरी और नंदनतत्व के बारे में
अनभिज्ञ महिला है।
समाचार प्रतिष्ठान के आधुनिक उपकरण
टेलीप्रिंटर के बारे में वह कुछ नहीं जानती।
आकाशवाणी और दूरदर्शन के शब्द और चित्र से
मनुष्य सांप्रतिक घटनाओं की जानकारी लेता है
मेरी मां नहीं जानती
मेरी मां ने टेलीफोन पर कभी बातचीत नहीं की है।
(साधारण श्रमिक के लिए टेलीफोन पर बात करना एक
उल्लेखनीय विलासिता की बात है।)
यहां तक कि मेरी मां ने जीवन में
कभी एक जोड़ी चप्पल भी नहीं पहनी।
मेरी मां न तो क्रांति समझती है और न ही वर्ग-संघर्ष
पूंजीवाद और साम्यवाद के द्वंद्व के बारे में

गांधीवाद और मार्क्सवाद की विरीतधर्मिता के बारे में
मेरी मां पूरी तरह अनभिज्ञ है।
मेरी मां नहीं जानती कि चुनावी वोट के परिणाम में
अधिसंख्य लोगों की
चर्बी और शिरातंतु का प्रसार होता है
जबकि इन सबके बीच
मेरी मां के जीवन का यह छठा निर्वाचन है
लेमोनेड कोल्ड ड्रिंक्स या कॉफी
चिकेन-चाउ कटलेट या सेंडविच की बात
मेरी मां ने कभी सुनी ही नहीं है
मेरी मां ने प्रेस-कॉन्फ्रेंस सेमिनार या
उद्घाटन समारोह के बारे में कभी नहीं सुना
मेरी मां पूरी तरह साधारण एक श्रमिक महिला है
हर कवि की मां-सी नहीं है मेरी मां
मेरी मां क्रांति नहीं समझती न ही वर्ग-संघर्ष
जबकि लंबे समय तक मेरी वृद्धा मां
शोषण और वंचना के विरुद्ध दृढ़ता से
प्रत्येक अंधकार में अविरल मेरी प्रकाश-किरण !
मेरी मां क्षुधा और अपमान के
मेरी माँ अन्याय के विरुद्ध
मेरे फूल और मेरी सुंदरता की प्रतीक।

प्रलय

सुधेश

उत्तर से आंधी घिर आई धर्मोन्माद की
जिसमें चिनार ही नहीं
चीड़ शीशम अपनी ऊंचाई छोड़ हुए बौने
केसर की फुलवारी नागफनी में बदल गई
अमृतमय झीलों में कोई विष घोल गया
धरती का स्वर्ग आंधी के झोंके में नरक बना
शीतल मंद पवन में बारूदी गर्मी आई...
प्रलय रुकने का नाम न लेती

कितना खून बहेगा वितस्ता में
डल झील समा लेगी कितने आंसू
कितनी पीढ़ियां रहेंगी भूखी प्यासी
जवानी कब तक घूमेगी आवारा ?...
वितस्ता का अमृत इतना लाल हुआ है
शंका होती है--क्या यही वितस्ता है अमृतमयी
या नरक में बहने वाली क्रूर नदी
जिसका विष फैल गया पंचनद में ?
रावी, चिनाव, झेलम, सतलज की
दूधिया निर्मल लहरें लाल हो गईं
मानवता का खून रुला फिरता है तट से तट पर। ....
यह धर्म कौनसा है/घृणा का ज़हर बांटता
गेहूं की क्यारी में बारूद बिछाता
हथगोलों की फसल उगा/अबोध सपनों का गला घोंटता
भोले अरमानों की हत्या करता/वह धर्म नहीं पागलपन है,
कहीं क्या सुना गया –
मानवता अपने ही घर में शरणार्थी/बनने को मजबूर हुई ?

'बरगद' खंडकाव्य का अंश

आतंकवाद के अनेक चेहरे हैं

एक चेहरा यह भी

झोला छाप डॉक्टर

क्या आप जानते हैं कि नकली डॉक्टरों द्वारा इलाज से आपके स्वास्थ्य तथा जान को खतरा है ? नकली डाक्टर नकली दवाओं का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे झोला छाप डॉक्टरों से जनता को बचाने व चेताने के लिए दिल्ली मेडिकल ऐसोसिएशन ने अपने लगातार चल रहे प्रयासों में एक और प्रयास जोड़ा 2 अक्तूबर, 2003 को। डीएमए सभागार में श्री मनोज रघुवंशी और मयंक द्वारा निर्देशित तथा दूरदर्शन द्वारा निर्मित फिल्म दिखाने के बाद गोष्ठी में डीएमए अधिकारियों के अलावा अन्य संस्थाओं व गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों ने इस बुराई के खिलाफ अपने-अपने विचार/सुझाव रखे। इसके पश्चात् राजघाट के सामने वाले मार्ग पर एक धरने का आयोजन भी किया गया। अंत में राजघाट पर जाकर इस बुराई के खिलाफ निरंतर लड़ने की शपथ ग्रहण की गई।

डॉ. अनिल बंसल
प्रेजीडेंट, डीएमए

डॉ. नरेश चावला
चेयरमैन, क्यूईएससी

डॉ. विजयकुमार मल्होत्रा
ऑनरेटी स्टेट सेक्रेटरी

विशिष्ट भारतीय रचनाकार 'वैरमुत्तु' पर केंद्रित

जुलाई-सितंबर-2003 अंक

अंक अद्‌वितीय है। तमिल के विशिष्ट रचनाकार श्री वैरमुत्तु से परिचित करवाकर आपने हिंदी भाषियों का बड़ा हित किया। डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम द्‌वारा लिए गए साक्षात्कार से कई नई सूचनाएं मिलती हैं। गुजराती कविवर राजेंद्र शाह के विषय में 'समाकलन' स्तंभ से जानकारी मिली। वस्तुत: 'युग स्पंदन' हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में सेतु की तरह कार्य कर रहा है। मुखपृष्ठ आकर्षक है। हार्दिक बधाइयां स्वीकार करें। (**डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया**, अलीगढ़) ❑ विशेषांक अत्यंत सराहनीय है। 'वैरमुत्तु' पर पहली बार निकला हिंदी अंक बेमिसाल है। हिंदी भाषियों के लिए पद्‌मश्री वैरमुत्तु की जानकारी तथा उनकी कविताओं का परिचय बहुत ही उपयोगी है। हिंदी साहित्य की श्रीवृद्‌धि के लिए आपका योगदान प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है। (**डॉ. एस. बषीर**, चेन्नै) ❑ अंक मिला ! भारतीय भाषाओं को जोड़ने का आपका प्रयास स्तुत्य है। रचनाओं का स्तर बहुत अच्छा है। यथावत् रखिए। (**डॉ. जगमल सिंह**, सिलचर) ❑ आपने अपनी पत्रिका को तमिल भाषा के प्रख्यात भारतीय रचनाकार पद्‌मश्री वैरमुत्तु जी को समर्पित कर अपने कर्तव्यों का पूरी ईमानदारी के साथ पालन किया है। श्री वैरमुत्तु जी की साहित्यिक यात्रा हमेशा प्रेरणादायी रही है। उन जैसे कर्मठ व समर्पित व्यक्तित्व के धनी बिरले ही मिलते हैं। उन्होंने साहित्य के माध्यम से लोगों को जो अच्छे से अच्छा परोसने का कार्य किया है, वह हमेशा याद रखा जाएगा। उनके मार्गदर्शन में अनेक व्यक्ति तथा संस्थाएं आगे बढ़ी हैं। पद्‌मश्री वैरमुत्तु जी अपने आप में एक बड़ी संस्था हैं। (**डॉ. राजेंद्र पटोरिया**, नागपुर) ❑ तमिल के प्रतिष्ठित कवि श्री वैरमुत्तु जी पर विशेष सामग्री देकर आपने कावेरी को गंगा से जोड़ने का राष्ट्रीय कार्य किया है। आपका प्रयास स्तुत्य है। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे सद्‌भावना के नए सुमन खिलेंगे। साधुवाद ! (**डॉ. इंदरराज बैद**, चेन्नै) ❑ नया अंक मिला। देखकर मन उल्लसित हुआ। एकदम नई साज-सज्जा में छपा है, युगानुरूप है। तमिल कवि श्री वैरमुत्तु पर केंद्रित यह अंक अच्छा लगा। भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को इस क्रम में प्रकाशित करने का कष्ट करें। (**डॉ. तिप्पेस्वामी**, मैसूर) ❑ अंक में विशिष्ट भारतीय रचनाकार के रूप में तमिल के साहित्य-स्रष्टा और बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व वैरमुत्तु के जीवन, रचना-प्रक्रिया, सोच-साधना तथा कृतियों पर मूर्धन्य हस्ताक्षरों के सारगर्भित विचार और प्रक्रियाएं छापकर आपने लघु पत्रिका की भूमिका और गुरु दायित्व को पूरा किया है। (**बिर्ख खड़का डुवर्सेली**, दार्जिलिंग) ❑ 'युग स्पंदन' वैरमुत्तु केंद्रित अंक मिला। बहुत अच्छा बन पड़ा है। आपकी लगन, लगाव के लिए बहुत बधाइयां ! यह साहित्यिक सेतु निर्माण का राष्ट्रीय महत्व का योगदान है, आप अकेले बखूबी निभा रहे हैं ! साधुवाद। (**र. शौरिराजन**, चेन्नै) ❑ आपके प्रेषित 'युग स्पंदन' तथा कार्ड हेतु आभारी हूं। आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। (**डॉ. भूपेंद्रराय चौधरी**, गुवाहाटी) ❑ 'युग स्पंदन' का नया अंक मिला। पृष्ठ पलटते ही 'प्यार करके देखो' कविता पर मेरी दृष्टि ठहर गई जिसे पढ़ते हुए लगा, उसमें प्यार की पूरी दुनिया समाहित है और उस दुनिया में वैरमुत्तु और हम जैसे लोग हैं जो प्यार

करते हुए ऐसी कविताएं लिख सकते हैं–यथार्थ में प्यार का सहयात्री तो कोई होता नहीं; आपकी पत्रिका के प्राणों का स्पंदन इसी कविता में है। बधाई ! (**दर्शन राही**, रीवा) ❑ आपका अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में अत्यंत सराहनीय प्रयास है। (**डॉ. तारिणी चरण दास 'चिदानंद'**, भुवनेश्वर) ❑ हिंदी साहित्य अखिल भारतीय साहित्य कहला सके, इसके लिए एक सुनियोजित अभियान चलाना परम आवश्यक है। मात्र मौखिक घोषणाओं से ही अपनी सोच को मुखर करने से कहीं ज्यादा जरूरी है अपनी सोच को कार्यान्वित करना। भले ही ऐसा प्रयास कितने भी छोटे स्तर पर क्यों न हो, वह श्रमसाध्य कर्म राष्ट्रीय महत्व का होगा। तमिल कवि श्री वैरमुत्तु पर आधारित 'युग स्पंदन' का जुलाई-सितंबर-2003 अंक ऐसा ही सराहनीय प्रयास है। इस अंक के प्रकाशन के लिए आप एवं आपके वे सहयोगी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने तमिल भाषा की रचनाओं को हिंदी की मौलिक प्रस्तुति के समकक्ष ला दिया है। अंक स्तरीय बन पड़ा है। आपसे अपेक्षा है कि भविष्य में भी इसी प्रकार हिंदी की राष्ट्रीय गरिमा बढ़ाने में आप अपना योगदान देते रहेंगे। (**डॉ. कैलाश नीहारिका**, ग्रेटर नोएडा) ❑ 'वैरमुत्तु' विशेषांक प्राप्त हुआ। आपके संपादन को बधाई ! (**डॉ. पारनंदि निर्मला**, विशाखापत्तनम) ❑ 'युग स्पंदन' का श्रेष्ठ, समुद्रित अंक पाकर अतीव हर्ष हुआ। संपादन-क्षेत्र में यह एक मानक उड़ान है। (**नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी**, भोपाल) ❑ 'वैरमुत्तु' पर इतनी सारयुक्त रचनाएं संचित करके 'परोसने के लिए' एक और बार बधाइयां ! (**डॉ. वेणु गोपाल कृष्ण**, केरल) ❑ वैरमुत्तु का विशेषांक मिल गया। आपको बधाई देती हूं। (**डॉ. पी. माणिक्यांबा**, हैदराबाद) ❑ कवि श्री वैरमुत्तु पर 'युग स्पंदन' का बहुत ही सुंदर विशेषांक प्रकाशित हुआ है। (**डॉ. उषा उपाध्याय**, अहमदाबाद)

❑ 5 से 7-9-03/26वां अंतरराष्ट्रीय समकालीन साहित्य सम्मेलन, मॉरीशस। विषय : (1) हिंदी की वैश्विक रचना धर्मिता का मूल्यांकन, (2) विश्व हिंदी का स्वरूप, (3) वैश्विक हिंदी कविता की दिशा। कवि सम्मेलन। आयोजक : डॉ. महेंद्र कार्तिकेय, समकालीन साहित्य सम्मेलन, मुंबई।

❑ 12 से 14-9-03/जलेस का छठा राष्ट्रीय सम्मेलन पटना में संपन्न।

❑ 14-9-03/अंग्रेजी हटाओ दिवस का भव्य आयोजन। आयोजक : साहित्य मंडल, नाथद्वारा।

❑ 21-9-03/लघु पत्रिका : दशा और दिशा विषय पर गोष्ठी। अध्यक्षता : श्री देवेंद्रनाथ शुक्ल। वक्ता : डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह, श्री श्यामसुंदर शर्मा, श्री मुन्ना लाल प्रसाद, श्री अजयकुमार साव, डॉ. तारावती अग्रवाल। संचालन : श्री ओम प्रकाश पांडेय। आयोजक : 'उत्तर पूर्वांचल पत्रिका'।

❑ 17 व 18-10-03/'डॉ. रामविलास शर्मा : व्यक्तित्व और चिंतन' विषय पर संगोष्ठी का उद्घाटन महामहिम श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, राज्यपाल कर्नाटक द्वारा संपन्न। वक्ता : डॉ. प्रकाश मनु, डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल, श्री देवेंद्र स्वरूप, श्री श्याम कश्यप, डॉ. गीता शर्मा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, श्री भगवान सिंह, डॉ. कुमुद शर्मा, डॉ. परमानंद पांचाल, श्री शंकर शरण, डॉ. कृष्ण चंद्र गोस्वामी। अध्यक्षता : श्री ब्रजकिशोर शर्मा। धन्यवाद ज्ञापन : श्री शशि शेखर शर्मा, निदेशक व डॉ. बलदेव सिंह बद्दन, मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक। आयोजक : नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली।

❑ 22 व 23-11-03/द्वि-दिवसीय अनुवाद कार्यशाला। विषय : (1) अनुवाद : आधुनिक संदर्भों में आवश्यकता एवं उपादेयता, (2) अनुवाद के संदर्भ में कार्यालयीन शब्दावली, टिप्पण एवं पत्राचार, (3) मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र के अनुवाद की समस्याएं, (4) भाषा की विकास प्रक्रिया और पारिभाषिक शब्दावली, (5) पत्रकारिता और अनुवाद की समस्याएं, (6) व्यावसायिक एवं कार्यालयीन अनुवाद, (7) साहित्यिक एवं साहित्येतर अनुवाद की समस्याएं, (8) अनुवाद का स्वरूप एवं प्रकार, (9) पारिभाषिक शब्दावली एवं अनुवाद अभ्यास, (10) प्रयुक्ति की संकल्पना और कोश प्रयोग की विधि। आयोजक : डॉ. निर्मला एस. मौर्य, विभागाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नै।

❑ 24 व 25-11-03/पंचम राष्ट्रीय संगोष्ठी-2003/विषय : यशपाल के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, (2) भगवतीचरण वर्मा का हिंदी साहित्य में योगदान, (3) प्रादेशिक भाषा में ऐतिहासिक चरित्र, (4) राजभाषा हिंदी : सांविधानिक स्थिति और गति, (5) अंतिम दशक का कथा-साहित्य : बदलते संदर्भ। आयोजक : दक्षिण भारत हिंदी परिषद एवं हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।

❑ 27 से 29-11-03/विदेश में हिंदी : स्थिति और संभावनाएं विषयक संगोष्ठी। स्वागत संबोधन : डॉ. ओम प्रकाश केजरीवाल। विषय प्रवर्तन : डॉ. विमलेश कांति वर्मा। पहला सत्र/प्रवासी भारतीय और हिंदी : स्थिति और संभावनाएं। अध्यक्षता प्रो. विद्यानिवास मिश्र। आलेख प्रस्तुत : प्रो. सुब्रमणी (फिजी), प्रो. आर. सीताराम (डरबन)। दूसरा सत्र/विदेश में सृजनात्मक

हिंदी साहित्य। अध्यक्षता प्रो. गोपीचंद नारंग। आलेख प्रस्तुति : श्री रामदेव धुरंधर (मॉरीशस), डॉ. सूर्यनाथ गोप (नेपाल)। तीसरा सत्र/विदेश में हिंदी : भाषा शिक्षण। अध्यक्षता प्रो. गौरीशंकर राजहंस। आलेख प्रस्तुति : प्रो. इंदिरा दसनायक (श्रीलंका), श्रीमती योरदान्का बोयानोवा (बुल्गारिया), श्री धर्मयश (इंडोनेशिया)। चौथा सत्र/विदेश में हिंदी : अध्ययन व शोध की परंपरा। अध्यक्षता डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय। आलेख प्रस्तुति : प्रो. के. मचिदा (जापान), प्रो. हेमनि वी. ओल्फन (अमरीका), प्रो. ज्यांग जिंग कुई (चीन)। पांचवां सत्र/विदेश में हिंदी व जनसंचार माध्यम। अध्यक्षता श्री हिमांशु जोशी। आलेख प्रस्तुति : डॉ. फ्रीडेमान्न श्लेंडर (जर्मनी), डॉ. विजय राणा (यू. के.), डॉ. बीरसेन जागसिंह (मॉरीशस)। छठा सत्र/विदेशी भाषाओं में अनूदित हिंदी साहित्य। अध्यक्षता श्री राजेंद्र यादव। आलेख प्रस्तुति : डॉ. जिलियन राइट (दिल्ली), डॉ. जी. वी. स्त्रालकोवा (मास्को)। आयोजक : नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली।

❑ 3-12-03/यशपाल शताब्दी समारोह। 'इंद्रप्रस्थ भारती' पत्रिका के 'यशपाल विशेषांक' का कथा शलाका पुरुष श्री कमलेश्वर द्वारा लोकार्पण। यशपाल (अपने साहित्य में) वर्तमान समाज की रूढ़ियों और कुरीतियों का प्रतिकार करते हैं (समारोह अध्यक्ष : श्री जनार्दन द्विवेदी)। यशपाल का मूल्यांकन केवल मार्क्सवाद से न करके उन पर मनोविश्लेषण की दृष्टि से विचार करना चाहिए (डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल)। यशपाल को जिन दायरों में देखा गया है वे अब तक मन माफिक दायरे थे, उनसे निकलना होगा (श्रीमती चित्रा मुद्गल)। उनका लेखन अतीत से वर्तमान को समझने के लिए दृष्टि देता है और प्रेरित करता है। (श्री खगेंद्र ठाकुर)। वे व्यक्ति के साथ समष्टि की मुक्ति का नक्शा तैयार करते हैं इसीलिए सबसे बड़े सामाजिक चेतना के लेखक हैं (श्री कमलेश्वर)। श्री मुजफ्फर अली द्वारा निर्देशित 'दमयंती' फिल्म (यशपाल की कहानी 'एक सिगरेट' पर आधारित) का प्रदर्शन। अंत में हिंदी अकादमी दिल्ली के सचिव श्री नानक चंद द्वारा सभी का आभार-ज्ञापन।

❑ 9-12-03/'प्रेम एवं परो धर्मः' विषयक व्याख्यान/मुख्य वक्ता : डॉ. दिलीप सिंह, अध्यक्ष : डॉ. राधेश्याम शुक्ल, विशेष अतिथि : डॉ. श्यामसुंदर अग्रवाल/आयोजक : विश्वंभरा, हैदराबाद।

❑ 12-12-03/रमणिका फाउंडेशन सम्मान-2001 समारोह। मोहनदास नैमिशराय-बिरसा मुंडा सम्मान (दलित पत्रकारिता), अजेय कुमार--सफ़दर हाशमी सम्मान (सांप्रदायिक सद्भाव), दिव्या जैन--सावित्री बाई फूले सम्मान (स्त्री-विमर्श), गिरीश पंकज--राजी स्मृति सम्मान (अनुवाद पत्रकारिता) 'सबाल्टर्न साहित्य : संवाद से एकजुटता तक' विषयक गोष्ठी। आयोजक : रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली।

❑ 12-12-03/'हिंदी मीडिया : चुनौतियां और संघर्ष' विषय पर परिसंवाद। श्री कमलेश्वर (मुख्य अतिथि), सर्वश्री मनोहर श्याम जोशी व आलोक तोमर (अध्यक्षता), लीलाधर मंडलोई, विष्णु नागर, (वक्ता), महेश दर्पण (संचालन)। आयोजक : श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास समिति, नई दिल्ली।

❑ 13 व 14-12-03/दलित साहित्यकार सम्मेलन। विषय : भूमंडलीकरण-उदारीकरण व निजीकरण में दलित लेखक-लेखिकाओं की भूमिका। पी. शिवकामी (तमिलनाडु), प्रो. ए. अच्युतन (केरल), डॉ. टी. वी. कट्टीमनी (कर्नाटक), डॉ. वी. कृष्णा (आंध्रप्रदेश), जॉसेफ

मैकवान और नीरव पटेल (गुजरात), ज्योति लांजेवार और कृष्ण किरवाली (महाराष्ट्र), चमन लाल और द्वारका भारती (पंजाब), कंवल भारती (उत्तर प्रदेश), मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, रजनी तिलक, विमल थोराट, शेखर पवार और अशोक भारती (दिल्ली) तथा सांसद मा. रामदास अठावले। आयोजक : नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑफ दलित ऑर्गेनाइज़ेशन्ज (नैक्डोर), दिल्ली।

❑ 16-12-03/दसवां आर्य स्मृति साहित्य समारोह : 2003/दस प्रतिनिधि कहानियां सीरीज़ की दस पुस्तकों का लोकार्पण तथा प्रतिनिधि रचना : 'साधार के द्वंद्व' विषय पर विचार-विमर्श। आयोजक : आर्य स्मृति साहित्य सम्मान, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।

❑ 20-12-03/'राष्ट्रीय आंदोलन, हिंदी और गांधी' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी। आयोजक : गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली।

❑ श्रीमती मृणाल पांडे की पुस्तक 'ओ उब्बीरी' का प्रख्यात अभिनेत्री एवं पूर्व सांसद शबाना आजमी द्वारा लोकार्पण।

❑ प्रख्यात साहित्यकार डॉ. पद्मजा घोरपडे के कहानी संग्रह 'गुत्थमगुत्था' का माननीय नेता और चिंतक श्री मोहन धारिया जी द्वारा लोकार्पण/'ज्ञानदा' महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे तथा पवन प्रकाशन, दिल्ली।

❑ प्रख्यात हिंदी साहित्यकार एवं जापानी विदुषी डॉ. राज बुद्धिराजा की पुस्तक 'उगते सूरज का देश जापान' का लोकार्पण भारत में जापान के राजदूत श्री वतारू निशिगहारो ने जापानी दूतावास में किया। इस अवसर पर प्रख्यात चिंतक डॉ. लोकेश चंद्र, 'समकालीन भारतीय साहित्य' के संपादक श्री गिरधर राठी, दूतावास की प्रथम सचिव सुश्री हितोमी सातो ने डॉ. बुद्धिराजा के भारत व जापान के मध्य एक 'हिंदी-सेतु' बनाने के श्रेय की भूरि-भूरि प्रशंसा की। स्वयं लेखिका ने जापानी संस्कृति व साहित्य से अपनी अंतरगता और अनन्यता का उल्लेख करते हुए स्वीकार किया कि एक साधक की भांति वह जापान की सांस्कृतिक गरिमा के प्रति श्रद्धावनत हैं। लोकार्पण समारोह का संतुलित संचालन सांस्कृतिक सचिव श्री शो इचि उएदा ने किया। समारोह में निदेशक, जापान फाउंडेशन, श्री यू फुकाज़ावा के अतिरिक्त अन्य सांस्कृतिक सचिव श्री पिकुचि व श्री केन नोकु नोगुचि की अत्यंत सक्रिय भागीदारी रही।

❑ दक्षिण अफ्रीकी उपन्यासकार **श्री जॉन मैक्सवेल कोएत्ज़ी**/साहित्य का नोबेल पुरस्कार। ❑ मराठी नाटककार **श्री एलकुंचवार**/सरस्वती सम्मान (के.के. बिड़ला फाउंडेशन)। ❑ **श्रीमती चित्रा मुद्गल**/व्यास सम्मान (के.के. बिड़ला फाउंडेशन)। ❑ **डॉ. हर्षनंदिनी भाटिया**/रांगेय राघव स्मृति सम्मान (रांगेय राघव समिति, दिल्ली)। ❑ **श्री शेखर जोशी**/मैथिलीशरण सम्मान (मध्य प्रदेश शासन)। ❑ **सुश्री मीरा नायर**/एशियाई अमेरिकी साहित्य। ❑ **डॉ. तारकेश्वरनाथ सिन्हा**/बाबू गुलाबराय स्मृति पुरस्कार। ❑ **श्री पुरुषोत्तम प्रशांत**/श्री शारदा ज्ञानपीठ सम्मान पुरस्कार 2003 (श्री शारदा ज्ञानपीठ शिक्षण संस्थान, डीडवाना)। ❑ **श्री सूरजपाल चौहान**/रमाकांत स्मृति पुरस्कार। ❑ **श्री दूधनाथ सिंह**/आनंदकार स्मृति कथाक्रम सम्मान (कथाक्रम सम्मान निर्णायक समिति) ❑ **डॉ. आरसु**/बाबू गंगाशरण सिंह हिंदी पुरस्कार (बिहार सरकार) ❑ **श्री उदय प्रकाश**/पहल सम्मान। ❑ **सुश्री मैत्रेयी पुष्पा**/सरोजनी नायडू पुरस्कार (द हंगर प्रोजेक्ट/गैर सरकारी संगठन)। ❑ **श्रीयुत श्रीनिवास वत्स**/श्रीमती रतनशर्मा स्मृति बाल-साहित्य पुरस्कार (डॉ. रतनलाल शर्मा स्मृति न्यास)। **श्री नीरज कुमार नैथानी**/हिंदी-भूषण उपाधि (राष्ट्रीय हिंदी परिषद, मेरठ)।

साहित्य अकादेमी पुरस्कार 2003

अंग्रेजी/द पेरिशैबल एंपायर : एस्सेज़ ऑन इंडियन राइटिंग इन इंगलिश (निबंध)/**मीनाक्षी मुखर्जी** ❑ **असमिया**/अनेक मानुह अनेक ठाई आरु निर्जनता (कविता)/**बीरेश्वर बरुआ** ❑ **उड़िया**/सूर्यस्नात (आलोचना)/**जतींद्र मोहन मोहांती** ❑ **उर्दू**/बादे सबा का इंतिज़ार (कहानी)/**सैयद मुहम्मद अशरफ़** ❑ **कन्नड**/कविराज मार्ग मत्तु कन्नड जगत्तु (निबंध)/**के.बी. सुबन्ना** ❑ **कश्मीरी**/येली फ़ोल गाश (कहानी)/(स्व.) **सोमनाथ ज़ुत्शी** ❑ **कोंकणी**/परीघ (कहानी)/(स्व.) **शशांक सीताराम** ❑ **गुजराती**/अखेपातर (उपन्यास)/**बिंदु भट्ट** ❑ **डोगरी**/झुल्ल बड़ा देआ पत्तरा (कविता)/(स्व.) **अश्विनी मगोत्रा** ❑ **तमिल**/कल्लिकात्तु इतिकासम (उपन्यास)/**आर. वैरमुत्तु** ❑ **तेलुगु**/श्रीकृष्ण चंद्रोदयमु (कविता)/**उत्पल सत्यनारायणाचार्य** ❑ **नेपाली**/अथाह (उपन्यास)/**बिंद्या सुब्बा** ❑ **पंजाबी**/भगत सिंह शहीद : नाटक तिकड़ी (नाटक)/**चरणदास सिद्धू** ❑ **बंगला**/क्रांतिकाल (उपन्यास)/**प्रफुल्ल राय** ❑ **मणिपुरी**/लैई खरा पुंसि खरा (कहानी)/**सुधीर नाउरेइबम** ❑ **मराठी**/डांगोरा : एका नगरीचा (उपन्यास)/**टी.वी. सरदेशमुख** ❑ **मलयालम**/आल्हायुडे पेन्नमाक्कल (उपन्यास)/**सारा जोसेफ़** ❑ **मैथिली**/ऋतंभरा (कहानी)/**नीरजा रेणु** (कामाख्या देवी) ❑ **राजस्थानी**/सिमरण (कविता)/**संतोष मायामोहन** ❑ **संस्कृत**/निर्झरिणी (कविता)/**भास्कराचार्य त्रिपाठी** ❑ **सिंधी**/तहकीक ऐन तनकीद (निबंध)/**हीरो ठाकुर** ❑ **हिंदी**/कितने पाकिस्तान (उपन्यास)/**कमलेश्वर** ❑।

साभार प्राप्ति-स्वीकार

❑ बादल छँट गए (कहानी संग्रह)/भीखी प्रसाद वीरेंद्र/मंजु प्रकाशन, मिलनपल्ली, सिलीगुड़ी-734405/80 रुपए/2003. ❑ पिताश्री की डायरी/संपादक : डॉ. टी. सी. गोयल/आरगो पब्लिशिंग हाउस हिमांशु सदन, 5 पार्क रोड, लखनऊ/2003. ❑ धरोहर/डॉ. सुधा शर्मा/सत्य प्रकाशन, एफ-23, सुभाष विहार, दिल्ली/100 रुपए/2003. ❑ दिल से दिल तक (कविता संग्रह)/शशि बलराज/निर्माण प्रकाशन, 1/3447, रामनगर, लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली-110 032/100 रुपए/2003. ❑ राम एक युगपुरुष/हरवंश गुलाटी/ब्रदर्स रामलीला कमेटी, 388/3, मुखर्जी नगर, दिल्ली-110 009/2003. ❑ हर्ष सुरभि (डॉ. हर्षनंदिनी भाटिया-अभिनंदन ग्रंथ)/संपादक : डॉ. विश्वनाथ शुक्ल, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ/मदनमोहन ब्रजलोक समिति, वृंदावन (उत्तर प्रदेश)/500 रुपए/2003. ❑ (1) स्मृतिगंधा (कविता संग्रह)/रीना भट्टाचार्य/(2) ब्रजगंधा (कविता संग्रह)/राजकुमार रंजन/एच.पी. भार्गव, बुक हाउस, भार्गव भवन, 4/230, कचहरी घाट, आगरा-282004/50 रुपए प्रत्येक/क्रमशः 2003, 2002. ❑ जनकपुरी के नाम (पांच विशेष पुस्तकें)/डॉ. ओमप्रकाश भाटिया अराज/बी-2-बी-34, जनकपुरी, नई दिल्ली-110 058/2003. ❑ अथ कठोपनिषद् रहस्य/आचार्य श्री अवस्थी/वैदिक अध्यात्म चेतना मिशन, वैष्णव कालोनी, पिपराली रोड, सीकर-332001 (राजस्थान)/40 रुपए/2003. ❑ (1) सच्ची खबर (2) एक लघु ज्वालामुखी (कविता संग्रह)/हेमराज सुंदर/हिंदी साहित्य अकादमी, मॉरीशस/क्रमशः 60 एवं 50 रुपए/क्रमशः 2002, 2001. ❑ तेरी मेरी उसकी कहानी (कहानी संग्रह)/रामकुमार बेहार/छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, 370, सुंदर नगर, रायपुर/80 रुपए/2001.
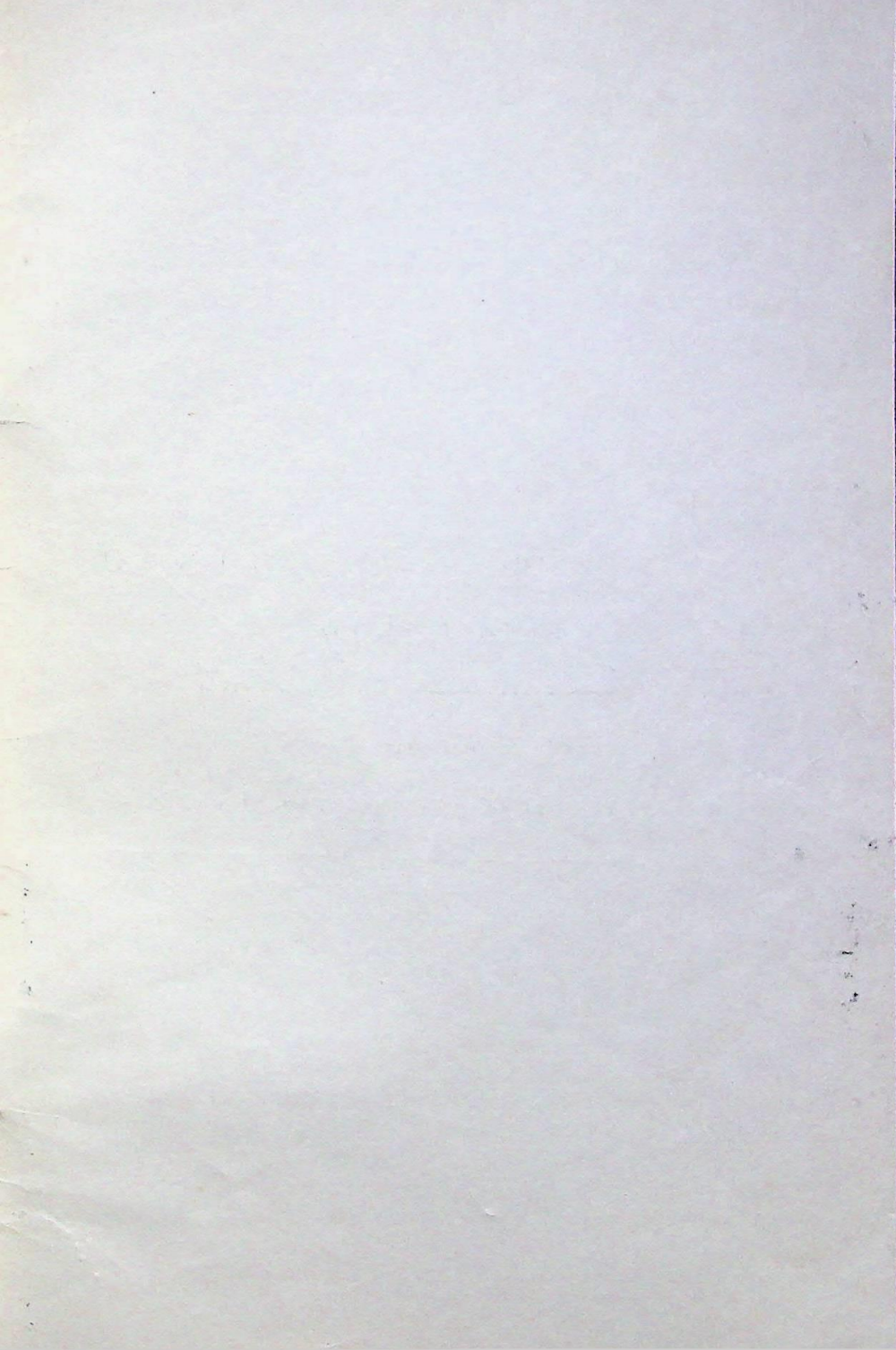
युग स्पंदन
(जनवरी-सितंबर, 2002)

जिसमें भारतीय रचनाकारों की माँ विषयक लगभग 100 कविताओं का अनुपम संकलन है।

रचनाकार : अली सरदार जाफ़री, आंदोगी मेमचौबी, आचार्य सारथी, आर. पी. लामा, आशा राजु, उमाशंकर जोशी, एंडलूरि सुधाकर, ए. जी. रतनाकाळेगौडा, एन. के. देशम, कँवलजीत भुल्लर, कर्ण थामी, कमल, कविदासन, कविता वाचक्नवी, काकली चौधुरी, किशोर पाहूजा 'जीवन', कुंजरानी लोड्जम चनु, कुमारी खाती, के. एस. निसार अहमद, के. सच्चिदानंदन, खिरोदा खड़्का, गीता, ग्रेस, चंद्रकांत देवताले, जगदीश गुप्त, जय गोस्वामी, जॅस फर्नांदीश, जी. एस. शिवरुद्रप्पा, ज़ोया ज़ैदी, ज्ञानकूत्तन, डी. राधाकृष्ण पिल्लइ, देवारति मित्र, नवकांत बरूआ, नागेश करमली, ना. बालामणि अम्मा, नामदेव ढसाळ, नारायण सुर्वे, निदा फ़ाज़ली, परिमल मुत्तु, पी. रामन, पुतली कायस्त, प्यारे हताश, प्रकाश पाडगांवकार, प्रद्युम्नदास वैष्णव, प्रियव्रत एलाड्.बा, बलदेव वंशी, ब्रजनाथ बेताब, बिल्कीस जफ़ीरुल हसन, भाग्य जयसुदर्शन, भानुजी राव, भा. रा. तांबे, मद्दूरी नागेशबाबू, मधुचंदा सइकीया, मधुप पांडेय, मलका नसीम, मीरा ठाकुर, रघुनाथ दास, रफ़िया शब्नम आबदी, रमाकांत रथ, रविंद्र, रश्मि रमानी, राजेंद्र शाह, राधाकृष्ण शिरफोड, रामकुमार कृषक, रामदरश मिश्र, रावुळपल्लि सुनीता, रीना शर्मा, लक्खीदेवी सुंदास, ललित शुक्ल, विजयाबाय सरमळकार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वीथि चट्टोपाध्याय, वैरमुत्तु, शरतचंद्र प्रधान, शुभदर्शन, शोभा जोशी, श्याम निर्मम, श्रीकांत जोशी, संतोष बंसल, संतोष सिंह 'धीर', संतोषसिंह शहरयार, सनत ताँती, सादिक़, सी. नारायण रेड्डी, सुंदरम, सुगतकुमारी, सुधेश, सुबोध सरकार, सुभाष शर्मा सुजाग्र, स्नेहमयी चौधरी, हरदयाल, हृषिकेश मल्लिक व अन्य।

अनुवादक : डॉ. अंजुमन आरा, अर्चना कामत, डॉ. अजयकुमार पटनायक, डॉ. अरविंदाक्षन, डॉ. इंदरराज बैद, डॉ. इबोहल सिंह काङ्जम, ओम नारायण गुप्त, डॉ. एन. श्री नाथ, डॉ. एम. के. प्रीता, डॉ. एम. रंगय्या, एम. विजय लक्ष्मी, डॉ. एम. शेषन, कर्णथामी, कनुप्रिया प्रशांत गायक, कमलाकर दत्ताराम म्हाळशी, डॉ. किशोर वासवानी, के. आर. कृष्णा राव, प्रो. गोरक्ष थोरात, डॉ. चंद्रलेखा, जयंती नायक, डी. राधाकृष्ण पिल्लइ, नम्रता कुमारी, डॉ. पद्मजा घोरपडे, डॉ. पद्मा पाटील, डॉ. पी.के. राधामणि, डॉ. पी. माणिक्यांबा 'मणि', बलवंत सिंह आँसू, बी. एन. ठाकुर, ब्रजनाथ बेताब, डॉ. ब्रजसुंदर पाढ़ी, डॉ. मंजु मोदी, डॉ. महाराज कृष्ण भरत, डॉ. महावीर सिंह चौहान, डॉ. महेंद्रनाथ दुबे, डॉ. मीनाक्षी काला, डॉ. मीरा सुंदर राज, मैना थापा आशा, रविकांत नीरज, रश्मि रमानी, डॉ. विजयराघव रेड्डी, डॉ. वी. कृष्ण, डॉ. शाहीना तबस्सुम, डॉ. शुभदर्शन, संध्या, संतोष सिंह शहरयार, संतोष अग्रवाल 'कल्पतरु', संतोष अलेक्स, संतोष सिंह 'धीर', सत्यानंद पाठक, डॉ. सना/बी. सत्यनारायण, सिद्धनाथ प्रसाद, सुरेंद्र दोशी, सुरेखा पाणंदीकर, हरीश कुमार अग्रवाल।

रचना-चयन एवं संकलन

श्रीमती मैना थापा आशा (असमिया), डॉ. अजय कुमार पटनायक (उड़िया), डॉ. शाहीना तबस्सुम (उर्दू), डॉ. स्नेहलता शरेशचंद्र (कन्नड), डॉ. महाराज कृष्ण भरत (कश्मीरी), डॉ. चंद्रलेखा एवं श्रीमती मनुजा जोशी (कोंकणी), डॉ. महावीर सिंह चौहान (गुजराती), डॉ. इंदरराज बैद (तमिल), डॉ. पी. मणिक्यांबा (तेलुगु), श्री ओम नारायण गुप्त (नेपाली) डॉ. शुभदर्शन (पंजाबी), डॉ. महेंद्रनाथ दुबे (बंगला), डॉ. देवराज (मणिपुरी), डॉ. पद्मजा घोरपडे (मराठी), डॉ. आरसु (मलयालम), डॉ. किशोर वासवानी (सिंधी)।

❑ पृष्ठ : 112 ❑ सहयोग राशि : 60 रुपए ❑

'युग स्पंदन' कार्यालय, 1084/44, मानकपुरा, करोलबाग, नई दिल्ली-5 से श्री कन्हैयालाल द्वारा प्रकाशित व तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित ❑ अवैतनिक संपादक : भ. प्र. निदारिया